* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्

भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंधनकर ॥

वर्ष ८ | गौराब्द ४७६, मास—विष्णु ५, वार—कारणोदशायी
हस्पतिवार, ३० फाल्गुन, सम्वत् २०१९, १३ मार्च १९६३ | संख्या १०-११

श्रीश्रीगौराङ्गस्मरणमङ्गल-स्तोत्रम्

[श्रीश्रीठक्कुर भक्तिविनोदकृत]

(संख्या ८ से आगे)

पौगण्डादौ द्विजगणगृहे चापलं यो वितन्वन् विद्यारंभे शिशुपरिवृतो जाह्नवीस्नानकाले ।
वारिक्षेपैर्द्विजकुलपतीन् चालयामास सर्वान् तं गौराङ्गं परमचपलं कौतुकीशं स्मरामि ॥६॥
तीर्थं भ्रामिद्विजकुलमणौ भक्षयन् पक्वमन्नं पश्चात्तं यो विपुलकृपया ज्ञापयामास तत्त्वम् ।
स्कन्धारोही च्छलबहुतया मोहयामास चौरौ वन्देऽहं तं सुजनसुखदं दण्डदं दुर्जनानाम् ॥७॥
आरुह्य पृष्ठं शिवभक्तभिक्षोः संकीर्त्य रुद्रस्य गुणानुवादम् ।
रेमे महानन्दमयो च ईश स्तं भक्तभक्तं प्रणमामि गौरम् ॥८॥
लक्ष्मीदेव्याः प्रणयविहितं मिष्टमन्नं गृहीत्वा तस्यै प्रादात् वरमतिशुभं चित्तसन्तोषणं यः ।
मस्यांश्चिह्नैर्निजपरिजनान् तोषयामास यश्च तं गौराङ्गं परमरसिकं चित्तचौरं स्मरामि ॥९॥
उच्छिष्ट भाण्डेषु वसन् वराङ्गः मात्रेददौ ज्ञानमनुत्तमं यः ।
अद्वैतवीथीपथिकै रुपास्यं तं गौरचन्द्रं प्रणमामि नित्यम् ॥१०॥
दृष्ट्वा तु मातुः कदनं स्वलोष्टैः तस्यै ददौ द्वे सितनारिकेले ।
वात्सल्य भक्त्या सहसा शिशु र्यः तं मातृभक्तं प्रणमामि नित्यम् ॥११॥
संन्यासार्थं गतवति गृहादग्रजे विश्वरूपे मिष्टालापैर्व्यथितजनकं तोषयामास तूर्णम् ।
मातुः शोकं पितरि विगते सान्त्वयामास यश्च तं गौराङ्गं परमसुखदं मातृभक्तं स्मरामि ॥१२॥

(क्रमशः)

पद्यानुवाद

[स्वधामगत श्रीमधुसूदनदास गोस्वामी]

दोहा

अब पर गेहन हूँ अधिक, करत चपलता जाय ।
बासन फोरत दुग्ध घृत, मधुरस देत बहाय ॥
प्रभु विद्या आरम्भ किय, विष्णु सुदर्शन पास ।
सहपाठी शिशु संग लै, सुरधुनि वारि विलास ॥
छीन्टा-छीन्टी पङ्क जल, फेंक पण्डितन अङ्ग ।
सुरसरि सतत हवावही, को जानत यह रङ्ग ॥
तीरथवासी विप्रको, कर पक्वान्न आहार ।
फेर दिखायौ तत्त्व प्रभु, कर करुणा विस्तार ॥
चढ़ जुग चोरन कन्ध प्रभु, भ्रमे नगर चहुँ ओर ।
मोहित कर निज गेह पुनि, आय उबारे चोर ॥ ७ ॥
शंभुभक्तकी पीठ चढ़ि, गाय रूद्र गुण नाम ।
खेल किये आनन्द अति भक्त-भक्त अभिराम ॥ ८ ॥
लक्ष्मी देवी बालिका गन सह सुरसरि न्हाय ।
मिष्ट अन्न उपचार प्रभु, लै लै तिनसौं खाय ॥
"गंगा दुर्गा दासिका, किंकर ब्रह्मा ईश ।
मोहि पूजौ मैं देउ बर, निश्चय विश्वा बीस ॥"
ऐसी प्रभु लीला करत, मन वांच्छित वर देत ।
"पति सर्वोत्तम मिलहि" यह,को जानत संकेत ॥
सुन चंचलता सुवनकी, जनक दण्ड कर जात ।
मसि चिह्नित गुरु कुल फिरौ सुत निरखत हरखात ॥ ९ ॥
जूठी हाँड़िन कोट कर, गौर विराजे जाय ।
अति पुनीत मा पुत्र गति, देखि लगी धमकाय ॥
आप कहत "मा, शुचि अशुचि भेद सकल अज्ञान ।
माया कल्पित सब है, अद्वय ब्रह्म समान" ॥१०॥
बाल चपलता मृत्तिका, फेंकी माता गात ।
नरिकेल सित जुगल हरि, लाय दिये अकुलात ॥११॥
अग्रज संन्यासी भये, जनक शोक बहु जान ।
समझाये तजि चपलता, सेवे विविध विधान ॥
पिता विरह व्याकुल जदपि, जननी करी विशोक ।
पढ़त रहत घर विनय सों, अनुसर मानुष लोक ॥१२॥

(क्रमशः)

धाम और सहजिया विचार

श्रीनवद्वीप नगर प्राचीनकालसे बंगालके पूर्वी गौड़की राजधानीके रूपमें विख्यात है। श्रीनवद्वीप महर्षि पाणिनि-कथित गौड़पुरकी प्राचीन-स्मृतिकी धारामें पुनः प्रतिष्ठित नगर है। आजसे एक हजार वर्ष पूर्व बंगालमें पालवंशी राजाओंका राज्य था। उन्होंने सुवर्ण-विहारमें राजधानी स्थापित की थी। सुवर्ण-विहार नवद्वीपके ही अन्तर्गत है। सूरवंशी नृपतिगण सूरडांगा या सरडांगामें राजप्रासाद निर्माण कर वहीं निवास करते थे। यह सूरडांगा या सरडांगा भी नवद्वीपके अन्तर्गत है। तत्पश्चात श्येन या सेनवंशी राजागण श्येनडांगामें निवास करते थे। इन सेनवंशी राजाओंके वंशधर राजाओंने मायापुरमें जो राज-प्रासाद निर्माण किया था, उसीका भग्नावशेष आज भी वल्लालढीबीके रूपमें विद्यमान है। इस वंशके लक्ष्मणसेन द्वितीयकी ८० वर्षकी आयुमें बंगालकी इस राजधानीका गौरव-सूर्य अस्त हो गया।

भागीरथीके तट पर प्राचीन कालसे ही शिक्षा-केन्द्ररूपी ऋषि-नीतिका अभ्युदय लक्षित होता है। सेनवंशी राजाओंकी राजसभामें उसी विद्या-प्रतिभाकी चरम उन्नति हुई थी। उसी सभामें कविवर श्रीजय-देवने "गीत-गोविन्द" नामक अष्टाध्यायी गीति-काव्यकी रचना करके सेनवंशी राजाओंके अभ्युदय कालमें वैष्णवधर्मका प्रतिभालोक विकीर्ण किया था। कुछ लोगोंकी धारणा ऐसी है कि सेनवंशी राजाओंमें विष्णुभक्तिकी प्रधानता न थी। किन्तु श्रीगीत गोविन्दके रचयिताकी तात्कालिक अवस्थासे यह विदित होता है कि सेनवंशी राजागण श्रीराधा-गोविन्दके परम उच्चकोटिके उपासक थे। किसी-किसीके मतानुसार ऋषि नीतिका चरमोत्कर्ष ही विष्णुभक्ति है और विष्णुभक्तिका चरमोत्कर्ष है—श्रीराधागोविन्द-सेवा-साहित्य, जो शाक्तेय मतवादका अन्तराय है।

गौड़पुर (नवद्वीप) की ब्रह्मशोभा राजश्रीके द्वारा पुनः सम्वर्द्धित होकर जिस विष्णुभक्तिका प्रबल उत्स गीतगोविन्दमें प्रवाहित है, उसी भक्तिका उत्स श्रीगौरसुन्दरकी श्रीमद्भागवत-व्याख्यामें प्रतिष्ठित है। विशुद्ध गौड़ीय-वैष्णवोंकी उपासना-प्रणाली सुष्ठुनीतिके ऊपर सम्वर्द्धित है। परन्तु कुपात्रमें पड़ कर वह बौद्ध महायान सम्प्रदायकी प्राकृत-साह-जिकतामें परिणत होने जा रही है। कुछ लोग भूल वशतः ऐसा समझते हैं कि बौद्धोंके अश्वघोषीय विचारके अनुसार प्राकृत सहजिया-मत ही श्रीचैतन्य-देव द्वारा प्रचारित वैष्णव धर्म है। किन्तु श्रीचैतन्य-देवका कथन यह है—

'प्राकृत करिया माने विष्णु-कलेवर।'
विष्णुनिन्दा नाहि आर इहार ऊपर॥'

गौड़देशके इतिहासका अध्ययन करनेवाले सभी इस बातको अच्छी तरह जानते हैं कि श्रीगौड़ीय-वैष्णव धर्मके प्रचारक श्रीअद्वैताचार्य आदि

महानुभव वैष्णवोंके पूर्ववर्ती* विद्यापति और चण्डीदास आदि शुद्धभक्तोंके गीतिकाव्य वर्तमान हैं। उन गीतोंसे पूर्व बँगला भाषाका परिचय जाननेके लिए सुललित श्रीगीतगोविन्द काव्य ही एकमात्र आकर ग्रन्थ है। यह अष्टाध्यायी ग्रन्थ श्रीमद्भागवतका परिशिष्ट-ग्रन्थ भी कहा जाता है। श्रीवृषभानुनन्दिनीके विरोधी सम्प्रदाय श्रीराधातत्त्व-को कालके अधीन करने जाकर ऋक्-परिशिष्ट-मंत्रकी अवहेला करते हैं। कुछ लोगोंकी ऐसी धारणा है कि निम्बग्राम या मुंगेरपत्तनके क्षेत्रोत्पन्न "श्रीनिम्ब-भास्कर" ने ही सबसे पहले श्रीराधागोविन्दकी उपासनामें दीक्षित होकर उसका सर्वप्रथम प्रचार किया है। परन्तु यह धारणा अकिंचितकर भित्ति पर अवस्थित है।

प्राकृत सहजिया जिस प्रकारसे प्राकृत जगतमें अधिरोह पथ पर चल कर सनातन वैष्णवधर्मको कलंकित करनेकी चेष्टा करते हैं, उस प्रकारकी चेष्टा-की उपयोगिता हम अप्राकृत मधुर-रीतिमें लक्ष्य नहीं करते। जो लोग हरि विमुख हैं, उनकी कोई दूसरी गति न होनेके कारण वे सब विषयोंको ही प्रकृतिके अंकमें लालित, पालित और सम्वर्द्धित समझते हैं। परन्तु शब्द शक्तिमें जो विद्वद्रूढ़ि और अज्ञरूढ़ि नामक दो वृत्तियाँ होती हैं, उनमेंसे अज्ञरूढ़ि वृत्ति दुर्बल-हृदय वाले व्यक्तियोंको शब्द द्वारा प्रकृत इन्द्रिय-भोगकी ओर ही परिचालित करती है। इसीलिये कुछ लोग निष्किंचन वैष्णवोंका अनुसरण करनेके बदले अनुकरण कर बैठते हैं। इसी अनु-करणके फल स्वरूप ही नव-रसिक सम्प्रदायके चिन्मयरसका यह विकृत ताण्डवनृत्य है।

निम्बग्राम या मुंगेरपत्तनके अधिवासी निमा-नन्दजी—गौरसुन्दरके गौण परिदर्शक मात्र हैं। बहुत अनुसंधानके पश्चात् भी मुंगेरपत्तन या निम्बग्रामका कोई पता नहीं चलता। केवल किंवदन्तीके अनुसार वह दक्षिण भारतमें है। यदि किसीने वास्तवमें इसके सम्बन्धमें यथार्थ तथ्यका अनुसंधान किया हो कि यह स्थान निश्चित रूपमें अमुक स्थानपर है अथवा था, तो निस्सन्देह सुन्दर भट्ट आदिके सम्बन्धमें वास्तविकरूपमें आलोचना करनी ही उचित है। साथ ही इस तथ्यका भी अनु-संधान होना आवश्यक है कि भास्कर-भाष्य आदि द्वैताद्वैत-विचार पूर्ण ग्रन्थ कब रचित हुए। हरि व्यास और केशव भट्टादि क्यों गौड़ीयोंके गीत-गोविन्द आदि ग्रन्थोंका पाठ कर भगवद्भजनमें प्रवृत्त हुए थे—इस विषयके मूलानुसंधानसे विरत होना गौड़ीयोंका कर्त्तव्य नहीं है। गौड़ीय वैष्णवधर्मके पश्चाद्-दृश्यरूपमें श्रीठाकुर बिल्वमंगल, श्रीजयदेव, श्रीविद्यापति और चण्डीदास आदि प्रसिद्ध हैं। तब क्या ये सभी अश्वघोष-मतावलम्बी प्राकृत सहजिया हैं? प्राकृत सहजियागणका कथन है—हाँ, वे सभी प्राकृत सहजिया हैं; क्योंकि नवरसिक सम्प्रदाय उन्हीं लोगोंके मतका पोषण करता है। परन्तु गौड़ीयोंके आराध्य श्रीराधाकृष्णके अभिन्नतनु

*चण्डीदास और विद्यापति समसामयिक हैं। श्रीविद्यापति और श्रीअद्वैताचार्यकी मिथिलामें भेंट हुई थी। उस समय विद्यापति बूढ़े और अद्वैताचार्य युवक थे।

श्रीगौरसुन्दरने अप्राकृत वृन्दावन-लीलामें जन गूढ़ातिगूढ़ तथ्योंका प्रकाश किया, वे सब श्रीमद्भागवत और गीतगोविन्दके पूर्णतम विकाश - स्वरूप हैं। उसीके अनुकरणमें पुष्टिमार्गको पुष्टि और निम्बार्ककी दशश्लोकी आदि पल्लवित हुई है।

सेनवंशी राजाओंके राजकवि श्रीजयदेव कविराज बंगदेशीय कविराजोंके आकर स्थानीय हैं। गौड़ीय-वैष्णव धर्मके प्रति प्रतिद्वन्द्विता और प्रतियोगिता करनेवाले जो सब राधागोविन्दके उपासक गौड़ीय वैष्णवोंके साथ विरोध या प्रीति स्थापन कर रहे हैं, हम उनकी शत्रुता या मित्रताकी उपयोगिताको सम्पूर्णरूपमें अस्वीकार नहीं कर सकते।

सनातन वैष्णव धर्मका उल्लेख वेद, रामायण, महाभारत उपनिषद, ब्राह्मण आदि ग्रन्थों तथा पुराणों के नाना स्थानोंमें है। यह कोई आधुनिक नहीं है। केवल भारतीय धर्म-विकाशमें ही इस चिन्ताश्रोतका स्थान परिलक्षित होता है—ऐसी बात नहीं, प्राचीन पाश्चात्य आदि धर्म-प्रचारकोंकी चित्तवृत्तिमें भी भगवत्सेवाका आंशिक भाव वहाँके देश, काल, पात्रादिके अनुरूप अस्वीकार नहीं किया जा सकता। परन्तु आजकल वहाँ किंचित्ज्ञान मिश्रा भक्तिमें जड़ प्रधानताको स्थापन करते हुए चिद् नीतिकी निन्दा देखी जाती है, यह परवर्ती कालमें विचारोंकी भ्रान्तिसे उत्पन्न हुई है। जड़नीतिमें श्रद्धा रखनेवाले धर्मजगतकी शैशव-विचार-धाराकी पोषकतामें जो अप्राकृत राधागोविन्दकी लीलाके प्रति अनादरका भाव दिखलाते हैं, उसका मूल्य ही क्या है, सुधीजन इस पर निरपेक्षरूपसे विचार करेंगे। प्राकृत सहज-धर्मने अप्राकृत सहजधर्मके विरुद्ध कैसी शत्रुता का कार्य किया है, उसकी आलोचना करनेसे ही ज्ञात होगा कि वस्तुके भोगमय दर्शन एवं वास्तव वस्तुके नित्यसेवोन्मुख-दर्शनमें आकाश-पातालका भेद विद्यमान है।

प्राकृत सहजिया लोगोंने अपने पूर्व-गुरुओंकी दुर्नीतिपूर्ण शिक्षाप्रणालीका अवलम्बन कर अप्राकृत सहजतत्त्वमें साधारण लोगके प्रवेशाधिकारको बन्द कर रखा है। साधारण लोग दो विभागोंमें विभक्त किये जा सकते हैं। पहले प्रकार वे हैं, जो अपनी प्राकृत इन्द्रियों पर भरोसा करके प्राकृत इन्द्रियों से देखे जानेवाले, सुनेजाने वाले और अनुभव किये जानेवाले आदि विषयोंको ही सब कुछ मानते हैं; वे भगवानको भी प्राकृत इन्द्रियोंके अधीन तत्त्व मानते हैं। इनको आध्यक्षिक विचारयुक्त कहा जाता है। इसके विपरीत जो लोग पार्थिव इन्द्रियज ज्ञान को हेय मानकर आत्मवृत्ति द्वारा इन्द्रियातीत सच्चिदानन्द भगवानकी सेवाकरनेके विचारसे सम्पन्न होते हैं, वे अधोक्षज विचार-सम्पन्न व्यक्ति कहलाते हैं। इन दोनोंमें महान अन्तर है। जहाँ पर इन दोनोंका पार्थक्य अस्वीकृत होता है, वहीं पर प्राकृत सहजिया रूप दुर्नीति पोषणका सुयोग होता है। इधर इस विषयमें अनभिज्ञ व्यक्ति इन प्राकृत सहजियाकी दुर्नीति लक्ष्यकर "सनातन वैष्णवधर्ममें भी कलङ्क है" —ऐसी भूल धारणा कर बैठते हैं।

प्राचीन गौड़पुर—श्रीनवद्वीपनगर भागीरथीके तट पर आधुनिक अनेक ग्रामों एवं नगरोंको आत्मसात्कर बहुत दूर तक फैला हुआ था। कालके

प्रभावसे राजश्री नष्ट होने पर भी प्रचीन श्रीमायापुर नवद्वीपमें प्रवाहित विद्याका प्रबल-श्रोत बन्द नहीं हुआ। भारतके विभिन्न भागोंसे तब भी प्रचुर संख्यामें छात्र और अध्यापक प्राचीन नवद्वीप श्रीमायापुरकी शोभा बढ़ानेमें पीछे नहीं रहे। यद्यपि भागीरथीकी धाराने श्रीनवद्वीपको इधर - उधर बसनेके लिये कई बार बाध्य किया, फिर भी नवद्वीप के छात्र और आधिवासी गण स्रोतस्वती जननीके विभिन्न क्रोड़में पालित होते चले आ रहे हैं।

उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दियोंके मध्य भगवती भागीरथीने एक बार फिर करवट ली। प्राचीन नवद्वीप मायापुरका अधिकांश भाग जलमग्न होने पर वहाँके गौड़ीय विद्याकेन्द्र और तीर्थवासी यात्रियोंको स्थान देनेके लिये कोलद्वीपमें ही नया नगर बसा। उसे ही अब नवद्वीप कहा जाने लगा। अतः आजकल कोलद्वीपमें ही आधुनिक नवद्वीप नगर है। प्राचीन नवद्वीप भागीरथीके पूर्वी तट पर है।

श्रीनवद्वीपमें प्राचीन कालसे ही अपरा विद्यानुरागी छात्र और अध्यापक देश-विदेशसे आते रहे हैं। एक दिन श्रीअद्वैताचार्य और श्रीजगन्नाथमिश्र आदि पराविद्यानुरागी पण्डितोंने पराविद्या-स्वरूप विष्णुभक्तिके अनुशीलनसे श्रीनवद्वीपके आलोकको देश-देशान्तरमें फैलाया था। उसीके आकर्षणसे श्रीनित्यानन्द, श्रीपुण्डरीक और श्रीईश्वरपुरी जैसे यतिराजगण विष्णुभक्ति प्राप्त करनेके लिये नवद्वीप नगरमें पधारे थे। जिन भगवान श्रीकृष्णचन्द्रने उनको श्रीगौड़पुर श्रीमायापुरमें आकर्षण किया था, उन अप्रकाशित कृष्णने अर्थात् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुजीने जिस लोकातीत अप्राकृत वैकुण्ठवाणीका कीर्तन किया, वह भी काल प्रभावसे अपराविद्याके प्रचार-प्रसारसे कुछ बाधित तो हुई, परन्तु श्रीगौर सुन्दरकी अलौकिक प्रतिभा एवं न्यायशास्त्रमें अद्वितीय पाण्डित्यद्वारा वैदिक वेदान्तके आधारपर प्रतिष्ठित न्यायशास्त्रके प्रवर्त्तनसे नव्य-न्यायकी धारा क्षीण हो गयी तथा अपनी दिशा बदलकर परमार्थ राज्यकी ओर अग्रसर होने लगी। फिर श्रीचैतन्य महाप्रभुके अप्रकटके पश्चात् उन्हींकी इच्छासे उसकी गति हरिहर वन्दोपाध्याय-तनयके हाथोंसे प्राकृत साहजिक धर्मकी ओर हो गयी। इधर श्रीअद्वैताचार्यके वंशपरम्परामें राधामोहनजीने श्रीअद्वैताचार्य के उपदेशोंके विपरीत स्मार्त्त रघुनन्दन भट्टाचार्यकी भक्ति विरोधी चेष्टाकी सहायता की।

श्रीनवद्वीप नगर और नगरवासियोंकी प्रकृति समय-समय पर विकारयुक्त होकर अपरा विद्याकी महिमाद्वारा पराविद्याको आच्छादित करनेका प्रयास करती है। परन्तु पराविद्याके आदि पथिक श्रीराधागोविन्दके उपासक गौड़ीय सनातन वैष्णवधर्मके प्रथमपुरुषके रूपमें श्रीमायापुरकी शोभाका वर्द्धन किया था। उन्हीं शोभा वर्द्धनकारीके विद्यापीठमें श्रीअद्वैताचार्यके गृहमें पुनः पराविद्यापीठकी स्थापना हुई है। यह पराविद्यापीठ पृथुकुण्डके तट पर ब्रह्माकी यज्ञस्थली अन्तर्द्वीपमें स्थित है। "श्रीभक्तिरत्नाकर" ग्रन्थमें इस पौराणिक उपाख्यानका इङ्गित पाया जाता है। अतएव मायापुर अन्तर्द्वीप कदापि कोलद्वीपके अथवा मोदद्रुम द्वीपके अंगके रूपमें परिगणित नहीं किया जा सकता है। यह सेनवंशीय

राजप्रासादके निकट ही गङ्गाके पूर्वी तट पर स्थित है।

भागीरथीके पश्चिम तट पर प्रौढ़ामाया निवास करती हैं। वे हरि विमुख देवानन्द आदि पण्डितोंके द्वारा परमार्थ विचारके प्रतिकूल आचरण करवाकर पुनः उस अपराधके लिये क्षमा मँगवानेकी लीला प्रकटित की हैं। मायामोहित जीव इन प्रौढ़ मायाको 'पोड़ा माँ' या 'विदग्धा माँ' कहते हैं। इन्हींके मायाजालने विस्तृत होकर लोगोंके नेत्रोंको आवृत करनेके लिये कर्कटिका—पल्लीमें "मियाँपुर" की स्थापना करवायी है। मियाँ'—शब्द फारसी भाषाका है, जो अतिशय विलासी सामाजिक लोगोंकी उपाधिके रूपमें व्यवहृत होता है। वहाँ अश्वघोषका महायानिक अनुष्ठान प्राकृत-सहजिया लोगोंका आनन्दवर्द्धन करेगा—यही विचार कलियुगी मनुष्योंके अनुरूप होगा।

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रीसरस्वती ठाकुर

श्रीश्रीआचार्य-वन्दना

[ॐ विष्णुपाद १००८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामीकी आविर्भाव तिथि-पूजाके उपलक्ष्यमें श्रीश्रीव्यासपूजाके अवसर पर जयपुर राजस्थानके प्रसिद्ध विद्वान् बागरोदी कृष्णचन्द्र जी शास्त्री, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ द्वारा रचित एवं प्रेषित—संपादक]

जय जय केशव जय जय केशव,
जय जय केशव करुणा सागर।
कलिमल क्षालक पतित उधारक,
जय जय केशव करुणा सागर॥
गौरचन्द्र यशमय विग्रह धर,
वदन सुधारस निखिल जगतिभर।
चरण चन्द्रका तिमिर तोमहर,
निर्मल रसमय मृदुतर गुरुतर॥जय०॥
विश्व विमण्डक पाप विखण्डक,
गुण गण भूषित मङ्गल कारक।
त्याग विराग सम्पता पारक,
सत्यव्रती संस्कृति विस्तारक॥जय०॥
ब्रह्मचर्य व्रत पालन कारी,
शम दम धारक दुख व्रजहारी।
कृष्णभक्तिकर सतत प्रचारी,
समता शुचिता दृढ़ व्रतधारी॥ जय०॥
लोभ मान माया छलनाशी,
दिव्य भागवत धर्म प्रकाशी।
हरे कृष्ण जय निरत उजासी,
वैष्णवजन मन हृदय निवासी॥जय०॥

—बागरोदी कृष्णचन्द्र शास्त्री साहित्यरत्न काव्यतीर्थ

प्रश्नोत्तर

प्रश्न १—बचपनमें परमार्थका अनुशीलन करना उचित है या अनुचित ?

उत्तर—बचपनमें भगवत् प्राप्तिका साधन नहीं किया जा सकता है—ऐसी धारणा सर्वथा भ्रमपूर्ण एवं अनुचित है। हम इतिहासमें ऐसा देखते हैं कि ध्रुव और प्रह्लाद जैसे अत्यन्त छोटी आयुवाले बालकोंने भी भगवानकी कृपा पायी है। यदि कोई मनुष्य किसी कार्यको करनेमें समर्थ हो चुका है, तो प्रत्येक मनुष्य उस कार्यको प्रयत्न करने पर अवश्य ही कर सकता है, इसमें सन्देह ही क्या है ? और विशेषतः उस कार्यको बचपनसे ही करनेका अभ्यास किया जाय, तो क्रमशः वह कार्य स्वभाव-स्वरूप हो जाता है तथा सहज-साध्य हो जाता है।

(श्रीचैतन्यशिक्षामृत १।१)

प्रश्न २—यदि माता-पिता आदि गुरुजन हरि-भजन करनेमें बाधा दे रहे हों तथा अन्याय उपदेश कर रहे हों, तो उनकी आज्ञाका पालन करना उचित है या नहीं ?

उत्तर—गुरुजनोंके अन्याय-उपदेशोंका भी पालन करना चाहिए—यह बात नहीं है। परन्तु यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिए कि उनकी वैसी आज्ञा या उपदेशोंके प्रति कटु-वचन या अपमानसूचक व्यवहार आदिके द्वारा उनके प्रति घृणा प्रकाश न की जाय। बल्कि मीठे वचनोंसे, नम्रतापूर्वक, उपयुक्त समयपर विनयपूर्ण विचारके द्वारा उनके अन्याय उपदेशों या आचरणोंकी आज्ञाको स्थगित करवा लेना चाहिए। (श्रीचैतन्यशिक्षामृत २।२)

प्रश्न ३—सभी भक्त क्यों नहीं होते ?

उत्तर—सभी आत्माओंमें ही भक्तिका बीज है। उसी बीजको अंकुरित एवं क्रमशः वृक्षके रूपमें परिणत करनेके लिए मालीगिरी अर्थात् बागवानी करनेकी आवश्यकता है। भक्ति शास्त्रोंकी आलोचना, परमेश्वरकी उपासना, सत्संग और भक्त-निषेवित स्थानमें निवास इत्यादि कुछ कार्योंकी आवश्यकता है। भक्ति बीज अंकुरित होनेके समय भूमि-परिष्कार, कण्टक और कंकड़ आदि दूरीकरणके कार्य अत्यन्त आवश्यक हैं। भक्ति-विज्ञानको जान लेने पर ये कार्य-समूह सुचारु-रूपसे हो सकते हैं। (प्रेम-प्रदीप)

प्रश्न ४—साम्प्रदायिक वैष्णव-मतोंके द्वारा जीव-जगतका क्या उपकार हो सकता है ?

उत्तर—इतिहासकी आलोचना करनेसे ऐसा ज्ञात होगा कि इस पवित्र भारत-क्षेत्रमें कभी भी सम्प्रदाय-विरुद्ध कोई मत नहीं था। जबसे पाश्चात्य विद्वानोंके साथ भारतका सम्पर्क होना आरम्भ हुआ है, तभीसे कुछलोग सम्प्रदाय विरोधी होने लगे हैं। सम्प्रदायकी प्रणाली जीवोंके लिए नितान्त हितकर है। सम्प्रदायमें प्रवेश करनेसे साधु-पदाश्रय, सद्धर्म-शिक्षा, धर्मकी आलोचना एवं क्रमशः सच्चा वैराग्य सहज ही प्राप्त होता है। जबतक सम्प्रदाय-विरोधी बुद्धि हृदयमें प्रबल रहती है, तबतक जीवन भर

तर्क वितर्क करके भी आत्मकल्याण नहीं किया जा सकता है। सम्प्रदायके कुछ लोग स्वार्थपर होकर बुरे कर्म करने लगते हैं। ऐसा देखकर सम्प्रदाय-प्रणालीकी निन्दा करना विवेकरहित व्यक्तियोंका ही कार्य हो सकता है। सम्प्रदायमें प्रवेश करके सम्प्रदायकी पवित्रताको अक्षुण्ण बनाये रखनेकी चेष्टा करना ही बुद्धिमान व्यक्तिका कर्त्तव्य है। बाजारमें सब समय अच्छे द्रव्य नहीं पाये जाते बल्कि अधिकतर बनावटी या मिलावटी द्रव्य पाये जाते हैं। ऐसा देखकर बाजारका संस्कार करना ही कर्त्तव्य है जिससे सभी लोग सरलतासे शुद्ध द्रव्य पा सकें। इसके बदले यदि कोई व्यक्ति बाजारकी वैसी बुरी अवस्था देखकर बाजार-प्रणालीको ही सदाके लिये उठा देनेके लिये प्रयत्न करे, तो उस व्यक्तिकी वैसी बुद्धिकी कोई भी भला आदमी प्रशंसा नहीं कर सकता। सम्प्रदायके पूर्व-पूर्व आचार्योंने जगत कल्याणके लिये ही सम्प्रदायका निर्माण किया था।

(सज्जनतोषणी ४।४-सम्प्रदाय-प्रणाली)

प्रश्न ५—वैष्णव किसे कहते हैं?

उत्तर—उदित विवेक व्यक्तियोंका नामान्तर ही वैष्णव है।

(जैवधर्म ३ रा अध्याय)

प्रश्न—वैष्णवधर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—वैष्णवधर्म केवल मनुष्यका ही नहीं, प्राणीमात्र अथवा जीवमात्रका ही नित्यधर्म है। वैष्णव जीव जड़मुक्त-अवस्था में अपने चिद्स्वरूपसे कृष्ण प्रेमका अनुशीलन करते हैं और जड़बद्ध दशामें उदित-विवेकवाले मनुष्य होकर जड़ और जड़ीय सम्बन्धोंमेंसे अनुकूल विषयोंको आदरपूर्वक ग्रहण करते हैं तथा सभी प्रतिकूल विषयोंका वर्जन करते हैं। वे शास्त्रोंके विधि-निषेधोंके अधीन होकर कार्य नहीं करते, बल्कि जब जो विधि हरिभजनके अनुकूल होती है उसका आदर करते हैं तथा जब वही प्रतिकूल जान पड़ती है, तो उसका बहिष्कार करते हैं। निषेधके विषयमें भी वैष्णवोंका व्यवहार पूर्ववत् ही होता है। वैष्णव ही जगतके एकमात्र सार पदार्थ हैं। वैष्णव ही जगतके बन्धु हैं। वैष्णव ही जगतके मङ्गल हैं।

(जैवधर्म ३ रा अध्याय)

प्रश्न ७—यदि वैष्णवधर्म इतना महान है, तब कुछ लोग इसे नेड़ा-नेड़ीका धर्म क्यों कहते हैं?

उत्तर—बाउल, साँई, नेड़ा, दरवेस, कर्त्ताभजा, अतिवाड़ी, आदि सभी अवैष्णव मत हैं। उनके उपदेश और कार्यमें बड़ा अन्तर होता है। अधिकांश लोग उनके अवैष्णव विचारों एवं बुरे कर्मोंको लक्ष्य कर विशुद्ध वैष्णव-धर्मके प्रति अश्रद्धा करते हैं। परन्तु वास्तवमें यह उनकी भूल है। उपरोक्त मतों और वैष्णव मतका अन्तर न जानने अथवा विशुद्ध वैष्णव मतका स्वरूप अज्ञात होनेके कारण ही वे ऐसी भ्रान्त धारणा कर लेते हैं। वास्तवमें वैष्णव-धर्म उपरोक्त धर्मध्वजी मतवादोंके दोषोंके लिये उत्तरदायी नहीं हो सकता।

(प्रेम-प्रदीप)

प्रश्न ८—क्या वैष्णव मूर्त्तिपूजक पौत्तलिक नहीं हैं?

उत्तर—वैष्णव लोग जिस विग्रहकी पूजा करते हैं, वह ईश्वरके अतिरिक्त एक पुत्तलिका नहीं है।

बल्कि वह ईश्वर भक्तिका उद्दीपक और निदर्शनमात्र है। परमेश्वर अद्वितीय पुरुष हैं। कोई भी दूसरा उनके समान या उनसे अधिक नहीं हैं। इसीलिये वे असमोर्द्ध कहलाते हैं। सभी उनके अधीन हैं। कहीं भी कोई ऐसी चीज नहीं जो उनमें हिंसाका भाव उत्पन्न कर सके। उनके प्रति भक्ति प्राप्त होनेके लिये जो कुछ किया जाता है, वे हृदयकी निष्ठाके प्रति लक्ष्य रख कर उसका फल प्रदान करते हैं। वे समस्त निराकार तत्त्वोंके निदर्शन हैं। यद्यपि निदर्शन लक्षित वस्तुसे भिन्न होता है, तथापि उसके द्वारा तत्त्व वस्तुका भाव उपस्थित होता है। जब कि घड़ी द्वारा निराकार काल,लेख-प्रणाली द्वारा अतिशय सूक्ष्म ज्ञान एवं चित्र द्वारा दया-धर्म आदि निराकार विषयोंका ज्ञान हो सकता है, तब भक्ति साधनमें आलोच्यगत लिङ्ग रूप श्रीविग्रह द्वारा भी उपकार होता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

(प्रेम-प्रदीप)

प्रश्न ९—वैष्णव जीवोंका क्या उपकार करते हैं? उनको तो किसी प्रकार जीव सेवाका कार्य करते नहीं देखा जाता?

उत्तर—जीवों पर दया करना—वैष्णव-धर्मका एक प्रधान अङ्ग है। जीवोंपर दया करना वैष्णवका स्वाभाविक गुण है। जिसमें यह स्वभाव लक्षित नहीं होता, वे सैकड़ों बाहरी चिह्नोंको धारण करने पर भी वैष्णव नहीं हो सकते। "जीवोंके प्रति दया, भगवन्नाममें रुचि और वैष्णवसेवा"—केवल ये तीन ही वैष्णवोंके कर्त्तव्य हैं—ऐसा श्रीशचीनन्दन श्रीगौरहरिने सर्वत्र ही उपदेश किया है। वैष्णवोंका प्रधान कार्य है—जीव समूहको कृष्णोन्मुख करना। जहाँ केवलमात्र स्थूल शरीरके रोगोंकी निवृत्ति या उदर भरण करना ही मुख्य उद्देश्य होता है, वहाँ वैष्णवताका लेश भी नहीं होता; क्योंकि इनके द्वारा केवल क्षणिक उपकार होता है—नित्य उपकार नहीं। तब एक बात है, यदि इन कार्यों द्वारा कृष्णोन्मुखी प्रवृत्तिको अग्रसर होनेमें कुछ सहायता होती है, तब इन कार्योंमें भी वैष्णवोंकी स्वतः प्रवृत्ति होती है।

(सज्जन तोषणी, वर्ष ४, जीवके प्रति दया)

प्रश्न १०—यदि शरीर निरोग न हो, तो परमार्थ की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

उत्तर—यदि हृदयमें भगवत प्रेम न हो, तो दीर्घ जीवन और रोगशून्यता केवल अनर्थकी जड़ें हैं। प्रत्याहार आदि साधनों द्वारा इन्द्रियोंका संयम हो जाने पर भी साधनमें प्रेमका अभाव होता है। ऐसी दशामें उसे शुष्क और तुच्छ वैराग्य कहते हैं। इसका कारण यह है कि परमार्थके लिये त्याग और ग्रहण दोनों ही एक समान फलदायक होते हैं। निरर्थक त्याग केवल जीवको पत्थरकी भाँति कठोर और निर्जीवसा कर देता है।

(प्रेम-प्रदीप)

प्रश्न ११—धर्म नाना प्रकारका क्यों हुआ?

उत्तर—शुद्धावस्थामें जीवका धर्म एक ही प्रकार का होता है। परन्तु जड़बद्ध होने पर जीवका वही धर्म प्रथमतः दो प्रकारका होता है—सोपाधिक और निरुपाधिक। इनमेंसे निरुपाधिक धर्म देशकाल आदि के भेदसे भी भिन्न-भिन्न प्रकारका नहीं होता। परन्तु जड़ोपाधि प्राप्त जीवका देश, काल और पात्र भेदसे स्वभावादिकी भिन्नताके कारण सोपाधिक धर्म देश-विदेशमें और कालभेदसे सहज ही विभिन्न प्रकारका

हो पड़ता है । उक्त सोपाधिक धर्म ही भिन्न-भिन्न देशोंमें भिन्न-भिन्न आकार और नाम धारण करता है। जीवकी उपाधि जितने ही अधिक मात्रामें दूर होती है, उसका धर्म भी उतने ही अधिक मात्रामें निरुपाधिक होता है । निरुपाधिक अवस्थामें सभी जीवोंका एक ही नित्य धर्म होता है ।

(सज्जन तोषणी ४।३ श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा)

प्रश्न १२—किन-किन गुणोंके होनेसे भक्तिका आविर्भाव होता है ?

उत्तर—कृष्णैकशरणके अतिरिक्त सारे गुण होने पर भी जबतक भक्तिके प्रति श्रद्धा उत्पन्न नहीं हो जाती, तबतक भक्ति नहीं होती। कृष्णभक्तिसे रहित सद्गुण-सम्पन्न जीवका जीवन भी व्यर्थ ही है। कृष्णभक्तिके उदय होनेके साथ ही सब जीवोंके प्रति दया, निष्पापता, सत्यसारता, समदर्शिता, दैन्य, शान्ति, गांभिर्य, सरलता, मैत्री, फलदक्षता, असत्कथाके प्रति उदासीनता, पवित्रता, तुच्छकाम-त्याग इत्यादि सारे गुणोंका सहज ही उदय होता है।

(सज्जनतोषणी ५।१—सद्गुण और भक्ति)

प्रश्न १३—विश्वप्रेम कृष्णप्रेमसे भी उदार और व्यापक है या नहीं ?

उत्तर—विश्वप्रेम अथवा मानवका-मानवके प्रति जो प्रेमसा दिख पड़ता है वह केवल आत्मप्रेमका विकार मात्र है—स्वयं प्रेम नहीं। आत्माका आत्माके प्रति जो प्रेम होता है, वही आत्मप्रेमका आदर्श है । प्रेमके यथार्थ स्वरूपको बिना समझे बूझे ही जिन लोगोंने मनोविज्ञान और प्रीतिविज्ञान इत्यादि लिखा है, वे चाहे जितनी भी युक्तियाँ क्यों न दें, केवल भस्ममें घी डालनेकी भाँति व्यर्थ ही परिश्रम किये हैं। अहङ्कारमें मत्त होकर केवलमात्र स्वस्व प्रतिष्ठाका उन्होंने संग्रह मात्र किया है । उनके उक्त कार्योंसे जगतका कोई हित होना तो दूर रहे, अहित ही साधित हुआ है। *** एक चिनगारी जिस प्रकार दाह्य-विषयको प्राप्तकर क्रमशः महाग्निका परिचय देकर सम्पूर्ण जगतको जला देनेमें समर्थ होती है, उसी प्रकार एक जीव भी प्रेमके यथार्थ विषय श्रीकृष्णचन्द्रको प्राप्तकर प्रेमकी महाबाढ़ ला देनेमें समर्थ हो जाता है।

(जैव-धर्म, द्वितीय अध्याय)

प्रश्न १४—किस प्रकारसे साम्प्रदायिक विवादोंसे छुटकारा मिल सकता है एवं सच्चे प्रेम-धर्मकी स्थापना हो सकती है ?

उत्तर—भगवान्की विशुद्ध लीला कथाओं एवं गुणावलियोंका कीर्त्तन करनेसे तथा उनके प्रेमसे (भगवान्के सम्बन्धसे) ही आपसमें भ्रातृत्वकी स्थापना ही विशुद्ध धर्म है । पूर्व संस्थापित धर्मोंमें काल प्रभावसे जो दोष प्रवेश कर गये हैं, उनको दूर कर दिये जाने पर सम्प्रदायोंमें परस्पर जो भजन सम्बन्धी भेद हैं अथवा पारस्परिक विवाद हैं, वे सर्वतोभावेन दूर हो जाते हैं। उस समय सभी वर्ण, सभी जातियाँ, सब देशोंके मनुष्य एकत्र होकर परस्पर भ्रातृत्व भावके साथ परमाराध्य परमेश्वरका नाम संकीर्तन सहज ही करने लगेंगे । तब कोई किसीको चाण्डाल बतलाकर घृणा नहीं करेगा तथा उच्चवंशमें जन्म होनेके अभिमानमें मत्त होकर कोई

जीव साधारण भ्रातृत्वको न भूल सकेगा। उस समय हरिदास प्रेमरसका कलस लेकर श्रीवासके मुखमें ढालेंगे और श्रीवास हरिदासकी चरणरेणुको अपने दोनों हाथोंसे उठाकर अपने सर्वाङ्गमें धारण कर "हा चैतन्य! हा नित्यानन्द कह कर सहज ही नृत्य करेंगे।

(सज्जन तोषणी ४।३-नित्यधर्मका सूर्योदय)

प्रश्न १५—वैष्णव-धर्मको ही एक मात्र-धर्म कहनेसे क्या यह उनकी हठवादिता नहीं है ?

उत्तर—वैष्णव-धर्मके अतिरिक्त और कोई भी धर्म ही नहीं है। इसके अतिरिक्त जितने भी धर्म कहे जाते हैं या कहे जायेंगे वे सभी वैष्णव-धर्मके या तो सोपान हैं अथवा उसकी विकृति। सोपान स्थानीय धर्मोंका यथायोग्य आदर करना चाहिए और विकृत धर्मोंके प्रति द्वेषरहित होकर भक्ति तत्त्व का अनुशीलन करना चाहिए। दूसरे धर्मावलम्बियों-के प्रति हिंसा द्वेषका भाव न रखना चाहिए। जब जिनका शुभ दिन उपस्थित होगा, वे अनायास ही वैष्णव बन जायेंगे—इसमें सन्देह नहीं।

(जैव-धर्म आठवाँ अध्याय)

प्रश्न १६—वैष्णव-धर्म ही सनातन-धर्म है, इसका प्रमाण क्या है ?

उत्तर—वैष्णव-धर्म जीवोंकी उत्पत्तिके साथ ही साथ उदित हुआ है। सर्व प्रथम वैष्णव हैं—ब्रह्मा। श्रीमहादेव जी वैष्णव हैं। सारे प्रजापति वैष्णव हैं। ब्रह्माके मानस पुत्र श्रीनारद मुनि वैष्णव हैं। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैष्णव-धर्म सृष्टिके प्रारम्भकालसे ही चला आ रहा है। यह कोई आधुनिक धर्म नहीं है। सच बात तो यह है कि सब जीव निर्गुण स्वभाव सम्पन्न नहीं होते। जिस जीव की प्रकृति जितना ही अधिक निर्गुण होगी, वह उतना ही उच्च कोटिका वैष्णव होगा। महाभारत, रामायण और पुराण ही आर्यजातिके प्रारम्भिक इतिहास ग्रन्थ हैं। इन सभी ग्रन्थोंमें वैष्णव-धर्मकी ही उत्कर्षता प्रतिपादित है। आपने सृष्टिके आदि कालमें वैष्णव-धर्म देख लिया। उसके पश्चात् हम ध्रुव और प्रह्लादको पाते हैं। ये दोनों ही विशुद्ध वैष्णव हैं। इनके समयमें और भी हजारों-हजारों वैष्णव थे, जिनके सम्बन्धमें कहीं भी कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि इतिहासमें केवल प्रमुख-प्रमुख व्यक्तियोंके ही नाम दिये जाते हैं। ध्रुव, मनुके पुत्र हैं और प्रह्लाद कश्यप प्रजापति के पौत्र हैं। ये सभी अत्यन्य आदिकालके हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अतः इतिहासके प्रारम्भिक कालसे ही वैष्णव धर्मको पाते हैं। उसके पश्चात् सूर्य वंशी और चन्द्रवंशी राजन्यवर्ग तथा बड़े-बड़े ऋषि-महर्षिजन भी वैष्णव थे। सत्य, त्रेता और द्वापर, इन तीनों युगोंमें ही वैष्णव-धर्मका उल्लेख पूर्ण रूपसे पाया जाता है। कलियुगमें भी दक्षिण भारतमें श्रीरामानुज, श्रीमध्वाचार्य और विष्णुस्वामी तथा पश्चिममें निम्बादित्य स्वामीने सहस्रों-सहस्रों मनुष्योंको विशुद्ध वैष्णव-धर्ममें दीक्षित किया है। जहाँ तक मेरा ख्याल है, उन्हीं लोगोंकी कृपासे भारतवर्षके अर्धसंख्यक मनुष्य माया समुद्रसे पार होकर भगवद्भजनमें प्रवृत हुए। बंगालमें ही देखिये हमारे प्राणेश्वर श्रीशचीनन्दन श्रीगौरहरिने न जाने कितने ही दीन-हीन और

पतितोंका उद्धार किया है । यह देख सुनकर भी आप लोगोंको वैष्णव-धर्मका माहात्म्य क्यों नहीं दिखलायी पड़ता है ?

(जैव-धर्म दशम अध्याय)

प्रश्न १७—यदि वैष्णव-धर्म अनादि कालसे ही चलता आ रहा है, तो श्रीचैतन्य महाप्रभुने ऐसी कौनसी नयी शिक्षा दी है, जिससे वे विशेष श्रद्धाके पात्र हैं ?

उत्तर—वैष्णव-धर्म कमल-पुष्पकी भाँति समयानुसार क्रमशः विकशित होता आ रहा है । पहले कलीके रूपमें था, फिर थोड़ासा विकशित हुआ और अन्तमें पूर्णरूपसे विकशित होकर अपने सौरभको चारोंओर बिखेरकर जीवोंको आकृष्ट करने लगा । ब्रह्माके समय भगवत् ज्ञान, मायाविज्ञान, भक्ति-साधन और प्रेम जीवोंके हृदयमें चतुःश्लोकीके रूप स्फुरण हुआ । वैष्णव-धर्मका यह अंकुरित होनेका काल है । प्रह्लाद आदिके समयमें कलिकाके रूपमें व्यक्त हुआ है । क्रमशः वेदव्यास मुनिके समयमें इस धर्म रूपी पुष्पकी पंखड़ियाँ कुछ-कुछ विकशित रूपमें दिखाई पड़ती हैं । रामानुज, मध्व आदि आचार्योंके समय वह कुछ विकशित पुष्पके रूपमें दिखलायी देता है और श्रीमन्महाप्रभुके समय वही अर्द्ध विकशित पुष्प पूर्ण रूपसे विकशित होकर अपने पवित्र सौरभसे सम्पूर्ण जगतको आकृष्ट करने लगा । नामप्रेम वैष्णव-धर्मका अत्यन्त निगूढ़ भाव है, जिसे श्रीमन्महाप्रभुने जगतके जीवोंके लिये प्रकाशित किया है । श्रीनाम संकीर्तन परम अमूल्य और अतिशय आदरकी वस्तु है—इस उपदेशको श्रीमन्महाप्रभुजीको छोड़ कर किसी दूसरेने क्या कभी प्रकाशित किया है ? यद्यपि यह शास्त्रोंमें पहले भी वर्तमान था, फिर भी जीवोंके सामने ज्वलंत आदर्शके रूपमें प्रकाशित नहीं था, जिससे साधारण जनता इसे अपने जीवनमें आचरण करनेकी प्रेरणा प्राप्त करती । श्रीमन्महाप्रभुसे पूर्व प्रेमरसका भंडार क्या इस प्रकार साधारण जीवोंमें किसीने कभी लुटाया है ?

(जैव-धर्म १० वाँ अध्याय)

प्रश्न १८—अच्छी बात है, यदि आपलोगोंका संकीर्तन इतना ही उपादेय है, तो पण्डित मण्डलीमें इसका आदर क्यों नहीं है ?

उत्तर—कलियुगमें "पण्डित"-शब्दका अर्थ विपरीत लगाया जाता है । सम्पूर्णशास्त्रोंमें पारङ्गत (उज्ज्वला) बुद्धिको "पण्डा" कहते हैं । ऐसी बुद्धिसे सम्पन्न व्यक्तिको पण्डित कहते हैं । 'पण्डित'—शब्द का यही यथार्थ अर्थ है । परन्तु आजकल थोड़ा-बहुत संस्कृतका अध्ययन करके न्याय और स्मृतिशास्त्रोंका लोकरंजक अर्थ करनेवाले अथवा निरर्थक युक्तिजालका विस्तार करनेवाले ही पण्डित कहे जाते हैं । ऐसे पण्डित भला किस प्रकार धर्मका तात्पर्य और शास्त्रोंका वास्तविक अर्थ समझ सकते हैं अथवा समझा सकते हैं ? निरपेक्ष होकर शास्त्रोंका अध्ययन करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह शुष्क तर्क-वितर्कों से थोड़े ही पाया जा सकता है ? सच बात तो यह है कि व्यर्थकी वाक् वितण्डा करके जो अपनेको और दूसरोंको वंचित करनेमें पटु हैं, ऐसे वंचक व्यक्ति ही कलियुगमें पण्डित हैं । ऐसी पण्डित-मण्डलीमें सर्वदा घट-पट सम्बन्धी तर्क ही हुआ

करते हैं। वहाँ वस्तुज्ञान, सम्बन्ध-ज्ञान-तत्त्व, जीवोंका चरम प्रयोजन तथा उसकी प्राप्तिके उपाय—इन विषयोंके सम्बन्धमें कभी कोई चर्चा नहीं होती। जब तक तत्त्वका यथार्थ विवेचन नहीं, तब तक प्रेम और संकीर्तन क्या वस्तु हैं, यह कैसे जाना जा सकता है ?

प्रश्न १९—वैष्णवधर्मका अनुशीलन करनेसे क्या किसी प्रकारकी कोई वैज्ञानिक उन्नति हो सकती है ?

उत्तर—विषय ज्ञानको हेय जानकर उसका तिरस्कार करके शुद्ध ज्ञानकी प्रतिष्ठाका नाम विज्ञान है। 'वस्तु' एक होने पर भी प्रक्रियाकी भिन्नताके कारण "ज्ञान" और "विज्ञान"—ये दो पृथक्-पृथक् नाम हुए हैं। तुम विषय ज्ञानको ही "विज्ञान" कहते हो और वैष्णवजन विषय ज्ञानको उसके सच्चेरूपमें संस्थापन करनेको 'विज्ञान' कहते हैं। वे धनुर्वेद, आयुर्वेद, ज्योतिष और रसायन आदि विषयोंकी समीक्षा करके इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि यह सब कुछ जड़ज्ञान है; इनके साथ जीवका वास्तवमें कोई नित्य सम्बन्ध नहीं है। अतएव ये जीवके नित्यधर्मके सम्बन्धमें सर्वथा अनावश्यक हैं। जो जड़ प्रवृत्ति द्वारा परिचालित होकर जड़-ज्ञानकी उन्नतिके लिये प्रयत्न करते हैं, उन्हें वैष्णवजन कर्मीकी संज्ञा प्रदान करते हैं—उनकी निन्दा नहीं करते। क्योंकि वे भौतिक उन्नतिके द्वारा वैष्णवोंके परमार्थ अनुशीलनमें परोक्षरूपमें कुछ-न-कुछ उपकार ही करते हैं। उनके क्षुद्र जड़मय ज्ञानको आप लोग 'प्राकृतिक ज्ञान' कहते हैं; इसमें कोई आपत्ति नहीं है। नामको लेकर वाद-विवाद करना मूर्खता है।

(जैवधर्म ९ वां अध्याय)

प्रश्न २०—यदि जड़-विज्ञानकी उन्नति न होती, तो वैष्णव लोग किस प्रकार भगवानका भजन करते ?

उत्तर—प्रवृत्तिके अनुसार प्रत्येक मनुष्य भिन्न-भिन्न प्रकारकी चेष्टाएँ करता है; परन्तु सर्वनियन्ता ईश्वर उन चेष्टाओंके फलको यथायोग्य सब मनुष्यों में वितरण कर देता है।

प्रश्न २१—वैष्णवधर्मका पालन करनेसे लोग असभ्य तो नहीं कहेंगे ?

उत्तर—मनुष्य जीवन थोड़े दिनोंका है। तिस पर भी इसमें अनेक विघ्न हैं। अतएव इस क्षणिक जीवनमें सरलतासे हरिभजन करना ही मनुष्यका एकमात्र कर्तव्य है। सभ्यता सीखनेका तात्पर्य आत्माको धोखा देना है। हम जानते हैं कि धूर्त्तताका ही दूसरा नाम सभ्यता है। मानवजीवन जब तक सन्मार्ग पर स्थित रहता है, तभी तक वह सरल रहता है। परन्तु जैसे-जैसे वह कुमार्ग पर अग्रसर होने लगता है, वह ऊपरसे मधुर-मधुर वचनोंसे लोक-रंजन करता हुआ अपने कुकर्मों पर पर्दा डालने के लिये अधिक सभ्य बननेकी चेष्टा करता है। सभ्यता नामका कोई गुण नहीं; सच्चा व्यवहार और सरलता ही गुण है। अपनी दुष्टता पर पर्दा डालनेकी वर्तमान प्रथाका नाम ही "सभ्यता" है। 'सभ्यता'-शब्दका अर्थ है--सभामें बैठनेकी योग्यता। अर्थात सरल भद्रताके अतिरिक्त और कुछ नहीं। तुम धूर्त्तताको सभ्यता कहते हो। यदि निष्पाप सभ्यता कहीं मिल सकती है तो केवल वैष्णवोंके पास ही मिल सकती है और यदि सभ्यता पापपूर्ण है, तो वह अवैष्णव समाजका ही भूषण हो सकती

है। तुम जिस सभ्यताकी बात कह रहे हो, उससे जीवके नित्यधर्मका कोई सम्बन्ध नहीं। यदि जन-साधारणको मुग्ध करनेवाली वेशभूषा ही सभ्यता है, तो वेश्याएँ तुमलोगोंसे कहीं अधिक सभ्य हैं। वस्त्रके सम्बन्धमें तो केवल इतना ही माना जा सकता है कि उससे आवश्यकतानुसार शरीर ढका रहे, वह साफ-सुथरा रहे तथा उसमें कोई दुर्गन्ध न रहे। आहारके सम्बन्धमें पवित्रता और उपयोगिताका विचार होता है। परन्तु तुम लोगोंके मतानुसार आहार केवल स्वादिष्ट होना चाहिए, चाहे वह भोजन अपवित्र ही क्यों न हो। मद्य-मांस स्वभावसे ही अपवित्र है। अतएव उनका भोजन करनेसे जो सभ्यता होती है, वह एक पापाचारके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वर्तमान सभ्यताको कलियुगी सभ्यता भी कह सकते हैं।

(जैवधर्म, पाचवाँ अध्याय)

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुर

श्रीगुरु-तत्त्व

श्रीगुरुका महत्व

जिस प्रकार भगवत्तत्वका ज्ञान भूरिभाग्य, महती तपस्या, निरन्तर साधना, भगवान्के नाम-रूप-गुण-लीलाके तैलधारावत् निरन्तर श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण आदिके पश्चात् प्राप्त होता है और जैसा कि भगवान् श्रीकृष्ण परम भक्त अर्जुनको भगवद्गीतामें कहा है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥
(गी० ७।३)

सहस्रों मनुष्योंमें से कोई ही मनुष्य मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले पुरुषों में कोई ही पुरुष मेरे परायण हुआ मुझको तत्त्वसे जानता है।

उसी प्रकार 'गुरुतत्त्व'का ज्ञान भी बड़ा ही दुर्गम और अज्ञेय है। सौभाग्यवान् साधक ही भगवत्कृपा और गुरुकृपाके बलपर इस ज्ञानको प्राप्त कर सकता है। गुरुतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करने पर वह अकुतोभय हो जाता है, कृतार्थ हो जाता है। साथ ही भगवान् एवं गुरुपादपद्मोंका अनन्य उपासक भी बन जाता है।

इस असार संसारमें पाप-पंकजमें निमग्न मानव के लिए एकमात्र गुरु ही समुद्धारक हैं, सच्चे हितैषी हैं। वे ही मायामृग मरीचिकामें पड़कर देहात्मबुद्धि सम्पन्न जीवोंके भ्रमके निवारक हैं; आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक—त्रितापोंकी असह-नीय ज्वालासे संतप्त जीवोंके लिए शीतल-पीयूषवर्षी-वारिद हैं, अघोंकी घनघोर घटाओंको विदीर्ण करने में शक्तिशाली प्रभंजन हैं, ममताके महोदधिमें निम-

ज्जित जीवके लिए कर्णधार हैं। हृदय-पटलस्थ अज्ञानान्धकारके संहारक भास्कर हैं, जिज्ञासु साधकोंके सच्चे मार्गद्रष्टा हैं तथा भवरोगकी एकमात्र महौषधि हैं। अतएव गुरुका महत्व सर्वतोधिक एवं भगवानसे भी प्रथम हैं। गुरु सर्वदेवमय हैं–'सर्वदेवमयो गुरुः'।

यद्यपि लोकमें विद्यागुरु, जन्मदाता, पालनकर्ता भी एक प्रकारसे गुरुके रूपमें ही माने जाते हैं, परन्तु ये आंशिक गुरु हैं। वास्तविक गुरु वही है, जो साधकका भगवान्से सम्बन्ध जोड़ देते हैं; उसकी वासना-ग्रन्थियोंका छेदन कर उसे शुद्ध वैष्णवका रूप दे देते हैं। गुरुका स्वरूप अपूर्व है।

श्रीमद्भागवतमें परम भागवत परीक्षितने महामुनि शुकदेवसे निवेदन किया था—

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने॥
(श्रीमद्भा० ६।१४।५)

—महामुने! मुक्तसिद्धोंमें भी जो प्रशान्तचित्तसे नारायण-परायण महात्मा हैं, वे बहुत ही दुर्लभ हैं। करोड़ोंमें कोई विरले ही ऐसे होते हैं।

मुण्डकोपनिषद् में सद्गुरुके स्वरूपका वर्णन इस प्रकार उपलब्ध होता है—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥
(मुण्डक १।२।३)

—भगवतत्त्वका विज्ञान (प्रेमभक्ति सहित ज्ञान) लाभ करनेके लिए हाथोंमें समिधा लेकर वेदके तात्पर्य को जाननेवाले और भगवत् तत्त्वविद् सद्गुरुके समीप कायमनोवाक्यसे गमन करना चाहिए। श्रीमद्भागवतमें भी गुरुके दो लक्षण बतलाये गये हैं। एक स्वरूप लक्षण और दूसरा गौण लक्षण। भगवत् तत्त्वविद् होना अर्थात् भगवत् तत्त्वका अनुभवी होना ही गुरुका स्वरूप या प्रधान लक्षण है और वेद पारंगत होना अर्थात् अखिल वेदतात्पर्यज्ञ होना ही गौण लक्षण है। ऐसे श्रुतिशास्त्र-निपुण एवं परब्रह्ममें निष्णात सद्गुरुके निकट ही कर्त्तव्याकर्त्तव्य जिज्ञासु पुरुषको उत्तम श्रेय जाननेके लिए गमन करना चाहिए—

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥
(भा० ११।३।२१)

परन्तु इन उपर्युक्त दोनों लक्षणोंमें से यदि स्वरूप लक्षणका अभाव हो तब केवल गौण लक्षण—सर्ववेद-शास्त्र-पारंगत होने पर भी वैसा व्यक्ति गुरु नहीं हो सकता—

शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात् परे यदि।
श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः॥
(श्रीमद्भा० ११।११।१८)

अतएव श्रीगुरुदेव कृष्ण तत्त्वविद् परम भक्तिमान होते हैं, भले ही वे विप्रकुलमें आविर्भूत हो, अथवा शूद्र कुलमें, चाहे वे संन्यासी हो अथवा गृहस्थ, यदि कोई गुरुकी जातिका विचार करता है अथवा मरणशील मानव-बुद्धि करता है, तो वह व्यक्ति निश्चय ही नारकी है—

'गुरुषु नरमतिर्यस्य वा नारकी सः।'

'रुद्रयामल'में गुरु-माहात्म्य इस प्रकार वर्णित है–

'गुरुरेव परोमंत्रो गुरुरेव परोजपः ।
गुरुरेव परा विद्या नास्ति किंचिद्गुरोः परम् ॥'

गुरु ही महान मंत्र हैं, गुरु ही श्रेष्ठ जप हैं, गुरु ही उत्तम विद्या हैं। इस लोकमें गुरुसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है।

अतः सद्गुरु ही सृष्टिरूपी वाटिकाके अविनाशी मनोहर दिव्य पुष्प हैं। भगवानकी करुणाके द्रवणशील स्वरूप हैं। भगवानके समान ही विश्व हितके लिए अवतीर्ण हैं। उनका दिव्य ज्योतिर्मय स्वरूप है। वे श्रद्धालु, योग्य साधकको भगवान्के निकट पहुँचानेमें प्रयत्नशील हैं। भगवदाज्ञासे धर्म-संस्थापक एवं अधर्म-नाशक हैं। इस लोकमें विभिन्न अवतारों के प्रकाशके कारण हैं।इससे यह प्रकट है कि न्यूनाधिक रूपसे भगवान् और सद्गुरु अभिन्न ही हैं, उनके कार्य भी एकसे ही है। अतः भगवान्में और गुरुमें किसी प्रकारका भेद नहीं है। अज्ञानसे मनुष्य उनमें भेद की कल्पना कर पाप भाक् होता है।

भगवान्ने श्री उद्धवसे कहा है—

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥
(भा० ११।१७।२७)

सद्गुरु साक्षात् मेरे ही स्वरूप हैं अर्थात् मुझसे अभिन्न आश्रयविग्रह हैं, इसलिये गुरुका कभी भी तिरस्कार न करें। उन्हें मनुष्य मानकर निन्दा न करें, क्योंकि वे सर्वदेवमय हैं—

यो वै मद्भावमापन्नः ईशितुर्वशितुः पुमान् ।
कुतश्चिन्नविहन्येत तस्य चाज्ञा यथा मम ॥
(भा० ११।१५।२७)

जो महापुरुष ध्यान योगके द्वारा स्वतन्त्र भावसे मुझे प्राप्त कर चुके हैं उनकी आज्ञा भी मेरी आज्ञाके समान माननी चाहिये। अवहेलना नहीं करनी चाहिये।

इससे यह सिद्ध है कि भगवान्में और गुरुमें कितना निकटतम सम्बन्ध है, कितनी तदाकारता है बिना गुरुकी कृपाके भगवान्से वास्तविक प्रेम भी नहीं हो सकता। शुद्ध निर्हेतुक प्रेमकी प्राप्ति भी गुरु कृपासे ही सम्भव है। सद्गुरु द्वारा ही उपास्यकी प्राप्ति होती है। साधकोंके लिये सद्गुरुका स्थान उपास्यसे उच्च है। इसीसे प्रथम पूजा सद्गुरुकी होती है। उसके पश्चात् उपास्यकी।

गुरु-तत्व—

"नास्ति तत्वं गुरोः परम्" गुरुसे परम कोई दूसरा तत्व नहीं है। वे स्वतः प्रकाश रूप हैं, मायातीत हैं।

यस्य साक्षात् भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ ।
मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत् ॥
(भा० ७।१५।२६)

भगवत् ज्ञानदाता आचार्य रूपी भगवान्को जो व्यक्ति मरणशील मानव समझता है, उसकी भगवत्सेवा, भगवान्के नाम-मंत्रका जप, हरिकथा-श्रवण, मनन आदि सभी कार्य हाथीके स्नानकी भाँति व्यर्थ हो जाते हैं।

श्री भक्तिसंदर्भमें गुरुतत्वके सम्बन्धमें वर्णित है।

यो मन्त्रः स गुरुः साक्षात् यो गुरुः स हरिस्वयम् ।
गुरु र्यस्य भवेत् तुष्टस्तस्य तुष्टो हरिस्वयम् ॥
(वामन कल्पे ब्रह्म वाक्य)

मंत्र ही साक्षात् गुरु-स्वरूप है और गुरु ही साक्षात् हरि-स्वरूप हैं । इसलिये गुरु जिनके प्रति संतुष्ट होते हैं, स्वयं हरि भी उनके प्रति संतुष्ट होते हैं ।

वैष्णवं ज्ञानवक्तारं योविद्यात् विष्णुवत् गुरुम् ।
पूजयेत् वाङ्मनः कार्यैः सशास्त्रज्ञ स वैष्णवः ॥
(नारद पञ्चरात्र)

भगवत्-ज्ञान-प्रदाता श्रीगुरुदेवको जो विष्णु-तुल्य जानकर मनसा, वाचा, कर्मणा उनकी सेवा करते हैं, वे ही वास्तव में शास्त्रज्ञ हैं, वे ही वास्तवमें वैष्णव या शिष्य हैं ।

श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंमें सदा भगवद्बुद्धिकी भावना ही जीवके लिये मंगलप्रद है । गुरुदेव स्वरूपतः भगवान नहीं हैं, उनपर भगवद् बुद्धिका आरोप करना होगा—यह एक अविवेक बुद्धि है । वास्तवमें गुरु साक्षात् भगवानके अभिन्न विग्रह ही हैं—

साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रै रुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः ।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥
(श्रीचक्रवर्ती ठाकुर)

अर्थात्—निखिल शास्त्रोंमें श्रीगुरुदेवको साक्षात् भगवानका अभिन्न विग्रह कहा गया है । साधुजन भी उनका उसी रूपमें ध्यान करते हैं । तथापि वे श्रीहरिके परम प्रेष्ठ एवं सर्वाधिक प्रियजन हैं । अर्थात् वे भगवानके अचिन्त्यभेदाभेद प्रकाश विग्रह हैं ।

यहाँ इतना ज्ञातव्य अवश्य है कि श्रीकृष्ण विषय विग्रह हैं और गुरुदेव आश्रय विग्रह हैं । यही एक विशेषता है । किसी भी चने आदिकी दाल के दो खण्डोंकी भाँति एक ओर आश्रय जातीय भगवान हैं, दूसरी ओर विषय जातीय भगवान । आश्रय जातीय भगवान ही गुरुपादपद्म हैं । जैसे सूर्य और उसका प्रकाश एक है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण और गुरु एक हैं । श्रीकृष्ण शक्तिमान हैं, श्रीगुरुदेव शक्ति हैं । श्रीकृष्ण गोपीनाथ हैं, गुरुदेव गोपी हैं । श्रीकृष्ण शक्तिमान् तत्त्व हैं । श्रीगुरुदेव शक्ति तत्त्व हैं । शक्ति और शक्तिमान् परस्पर अभिन्न हैं । "शक्ति शक्तिमतोरभेदः ।" श्रीगुरुदेव साक्षात् भगवान्के परमभक्त भक्तराज हैं । श्रीगुरुदेव सेवक विग्रह हैं । वे श्रीकृष्णकी आकर्षिणी शक्ति हैं, भगवत् कृपाके मूर्त्तिमान विग्रह हैं ।

साधक या शिष्य—

यहाँ यह जानना आवश्यक है कि श्रेष्ठतम साधक ही श्रीगुरुदेवकी प्राप्ति कर सकता है । जो आलसी है, मलिन है, अहङ्कारी, क्रोधी, लोभी, विषयासक्त, परछिन्द्रान्वेषी, मत्सरी, वंचक, कटुभाषी, परस्त्रीमें आसक्त, परसंतापी, निर्दयी, दुरात्मा, पापिष्ठ, नराधम कुकर्मी है, वह गुरुदेवके पादपद्मोंका उपासक नहीं हो सकता । यदि हमें श्रीगुरुदेवकी प्राप्ति की उत्कट लालसा है, तो हृदयसे अभिमान, स्वार्थ, आलस्य, आन्तरिक मलिनताको दूर करना पड़ेगा । विषयवासनासे जो हमारा हृदय बन्द है, उसे खोलना होगा । विषय-तृष्णा, आलस्य, ममता, काम आदि दुर्गुणोंका त्याग करना पड़ेगा । निष्काम कर्म करने की भावना जागृत करनी होगी । हमें इन्द्रिय और मनका निग्रह करना पड़ेगा, ध्यान एवं मननकी भावना प्रकट करनी होगी । शुद्ध आचरण, उपास्य और सद्गुरुमें एकनिष्ठा, अचलता, अहैतुकी शुद्धा भक्ति होनेपर गुरुदेव अवश्य प्राप्त होंगे । सद्गुरुकी प्राप्ति वनमें ढूँढ़ने, पर्वत-पर्वतमें, तीर्थोंमें घूमनेसे

नहीं होती। उनकी प्राप्ति तभी होती है, जब साधक के निष्कपट और शुद्ध हृदयमें शुद्धाभक्तिकी प्रबल पिपासा जागृत हो, भगवत् अनुरागको प्राप्त करने के लिये उसके हृदयमें व्याकुलता पैदा हो जाय। तब वह श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंके लिये सर्वस्व त्याग कर चल पड़े। त्याग परोपकार, सेवा व्रत ही श्रीगुरुदेवको आकर्षित करते हैं। जैसे ही साधकके हृदयमें अत्यधिक-विकलता बढ़ी, गुरुदेव फिर कृपा करनेमें विलम्ब नहीं करते।

गुरुदेवकी प्राप्तिके लिये गुरुके मन्त्रका जप, ध्यान, उनका स्मरण, उनके अद्भुत त्यागका मनन, उनकी भक्ति, उनके करुण भावको जीवनमें अनुसरण का प्रयत्न, पारमार्थिक कल्याणके लिये त्याग, इस-प्रकारकी साधना करने पर साधक या शिष्यको प्रथम किसी सत्पुरुषके दर्शन होंगे, जिन्हें सद्गुरु प्राप्त हैं। फिर उनके द्वारा उसे सद्गुरुकी प्राप्ति होगी। संसारके उद्धारमें गुरु ही कर्णधार हैं। उपास्य के देशमें साधक श्रीगुरुदेवके माध्यम से ही पहुँच सकता है। सद्गुरुसे एक बार सम्बन्ध स्थिर होने पर फिर कभी नहीं टूटता।

साधक जैसे ही योग्य हो जाता है, गुरु उसको ढूँढ़ते हुए उसके पास पहुँच जाते हैं, वह संसारके जीवोंका निरीक्षण इस अभिप्रायसे करते हुए घूमते हैं कि किसे उनकी आवश्यकता है और कौन सहायता चाहता है। अधिकारी साधकको देखते ही गुरुदेव उसको चुम्बककी भाँति आकर्षण कर लेते हैं। जिज्ञासु साधक सद्गुरुकी प्राप्ति का जितना इच्छुक रहता है, उससे सहस्रगुणा अधिक सद्गुरु उसके पास पहुँचनेकी इच्छा करते हैं, जिससे वे उसकी सहायता कर सके। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि गुरुदेव कभी भी अपने तत्त्वोंका प्रकाश नहीं करते। क्योंकि अधिकांश मनुष्य यही प्रार्थना करने लगते हैं कि हमें महात्मा बना दिया जाय, संसारके वांच्छित पदार्थ हमें प्राप्त हों, आधि-व्याधि और अन्य दुःख दूर हों। इससे यही होगा कि सभी भक्तिका पुरुषार्थ करना छोड़ देंगे। अतः अनधिकारी के लिये श्रीगुरुदेव सदैव अपने तत्त्वोंको अन्तर्लीन करके रहते हैं। संसारी लोगोंके दुष्टाचरणसे स्थान भी अपवित्र हो गये हैं। इसीसे वे अधिक जनसंपर्क के प्रति भी रुचि नहीं लेते। अधिकारीके समक्ष वास्तविक स्वरूपसे प्रकट होते हैं। गुरुदेवसे भक्ति प्राप्तिके लिये भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

> तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
> उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥
>
> (गीता ४।३४)

जिज्ञासु शिष्य तत्त्वदर्शी गुरुको श्रद्धापूर्वक दण्ड-वत्-प्रणाम कर, निष्कपट सेवाद्वारा सन्तुष्ट कर निष्कपट भावसे उनसे भगवत्तत्त्व सम्बन्धी प्रश्न जिज्ञासा करेंगे। तब श्रीगुरुदेव प्रसन्न होकर उस ज्ञानका उपदेश करेंगे, जिससे वह शिष्य भगवानको प्राप्त करेगा।

गुरु-प्राप्तिमें प्रणिपात, श्रीगुरुके प्रति पूर्ण श्रद्धा-विश्वास, भक्तिके लिये हृदयमें प्रबल पिपासा, गुरुभक्ति, प्रेम, सर्वस्व समर्पण और सेवा आवश्यक हैं।

निरन्तर अभ्यास, शास्त्राज्ञाओंका पालन, दृढ़-संकल्प, प्रवृत्ति मार्गसे निकल कर निवृत्ति मार्ग द्वारा उपास्यकी सेवाके लिये तत्परता, शुद्धाचरण, हृदयकी पवित्रता, सर्वात्म-भाव, पर दुःखसे दुःखी, पर-सुखसे

सुखी आदि सद्गुण भी होने चाहिये । तभी वह गुरुदेवके पादपद्मोंका अधिकारी हो सकता है ।

गुरु परम्परा

यह परम्परा अति प्राचीनकालसे प्रकट है । भगवान पुरुषोत्तम ही जगत्के आदि गुरु हैं, उन्होंने ही सृष्टिके समय ब्रह्माको उत्पन्न कर गुरुतत्त्वका महत्व समझाते हुए भगवतत्त्वका उपदेश दिया ।

भूयस्त्वं तप आतिष्ठ विद्याञ्चैव मदाश्रया' ।

पुनः श्रीमद्भागवत ११।१४।३ में कहते हैं—

कालेन नष्टा प्रलये वाणीय' वेदसंज्ञिता ।
मयाऽऽदौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः ॥
तेन प्रोक्ता स्वपुत्राय मनवे इत्यादि ।

अर्थात्—वेदवाणी समयके फेरसे प्रलयकालमें लुप्त हो गयी थी; फिर सृष्टिके प्रारम्भमें मैंने (श्रीकृष्णने) उसका विशद रूपसे ब्रह्माको उपदेश किया । ब्रह्माने पुनः अपने पुत्र मनु आदिको उपदेश किया ।

अन्यत्र भी—'परव्योमेश्वरस्यासीच्छिष्यो ब्रह्मा-जगत् पतिः' अर्थात् वैकुण्ठपति नारायणके आदि शिष्य विश्वकर्त्ता ब्रह्माजी हैं । इन लोकपितामह ब्रह्मासे यह वेदवाणी या भगवतत्त्वज्ञान परम्परा-क्रमसे श्रीनारद, व्यासदेव, शुकदेव आदि द्वारा जगत में फैला है । पुनः श्रीनारायण-प्रिया 'श्री' जी (लक्ष्मी जी) श्रीरुद्र एवं सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार–चतुःकुमार–इनसे भी क्रमशः और भी तीन परम्पराएँ निकलकर भगवतत्त्वको सर्वत्र प्रकाशित और प्रसारित किया । उपर्युक्त केवल चार परम्पराएँ ही भगवतत्त्वका ज्ञान सम्यक् रूपसे प्रदान करती हैं । इसलिये इनको चार सत् सम्प्रदाय कहते हैं ।

जगद्गुरु श्रीनारद द्वारा कितना कार्य हुआ है, यह वर्णनसे परेकी वस्तु है । महर्षि वाल्मीकि और भगवान वेदव्यास जैसे सद्गुरु उन्हीं की कृपासे उपलब्ध हैं, जिन्होंने हमें रामायण, श्रीमद्भागवत आदि अठारह पुराण प्रदान किये गये हैं, जो मानव जीवनके उद्धारक हैं, प्रबल साधन हैं ।

कोई काल, कोई देश, कोई स्थान, कोई सम्प्रदाय, कोई सत् शास्त्र ऐसा नहीं है जो आज सूर्यके प्रकाश से भी अधिक अलौकिक निरन्तर भासमान गुरुदेव के प्रकाशसे प्रकाशित न हो । गुरुदेवके स्वरूपका वर्णन और उनके उद्धारके कार्य सारे विश्वमें ओत-प्रोत है । प्रारम्भसे लेकर आज तक युगों-युगोंसे श्रीगुरु-देवके पाद-पद्मोंसे निसृत जलधारामें अवगाहनकर अनेक जीव धन्य हो रहे हैं । तथा अपने पाप कलुष को धोकर भगवान्की भक्तिके अधिकारी बन रहे हैं । उनकी हरिरस पूरित वाणीका श्रवण कर कृतार्थ हो रहे हैं । उनके दर्शन कर अपना जीवन सफल कर रहे हैं ।

आज जो देशकी दशा अस्तव्यस्त हो रही है, उसका एकमात्र कारण गुरुदेवके पाद-पद्मोंमें भक्तिका अभाव है । गुरुदेवके प्रति उपेक्षा श्रद्धा और दृढ़निष्ठाका त्याग है । उनके प्रति मानव बुद्धि की कल्पना है । यदि देश को फिरसे अपना प्राचीन गौरव प्राप्त करना है तो एकमत हो श्रीगुरुदेवके पाद-पद्मोंमें अकपट भावसे अपना मस्तक रख दें और प्रणति पुरस्सर उद्धारकी प्रार्थना करें ।

—वागरोदी, श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री (सा० रत्न)

भगवानकी कथा

(पूर्व-प्रकाशित वर्ष ८, संख्या ९, पृष्ठ २०८ से आगे)

हमारे पूर्व-पूर्व महाजनोंने अर्चन-विधिका प्रवर्त्तन कर प्रत्येक साधरण गृहस्थके घरमें विष्णुसेवाकी व्यवस्था की थी। इस प्रकार उन्होंने सभीको कर्मयोगी बननेकी सुविधा प्रदान की थी। आज उसी प्रकारसे बड़ी-बड़ी मशीनके कारखानों, व्यवसायी-प्रतिष्ठानों, बड़े-बड़े अस्पतालों और सभी पार्थिव प्रतिष्ठानोंमें विष्णुसेवाकी व्यवस्था होनी चाहिए। इसके द्वारा यथार्थ पारमार्थिक साम्यवादकी स्थापना होगी। नारायणको दरिद्र न बनाकर उन्हें सर्वेश्वर श्रीलक्ष्मी-पति नारायणकी सेवा-प्रतिष्ठा द्वारा दरिद्रों पर कृपा करना उचित है। यही शास्त्रविधि है। वे नारायण विष्णुतत्व हैं। विष्णुतत्व अनेक रूपोंसे प्रकाशित होनेपर भी उनमेंसे तीन रूप प्रधान हैं:—(१) श्री श्रीलक्ष्मीनारायण, (२) श्रीश्रीसीताराम और (३) श्रीश्रीराधाकृष्ण। प्रायः इन्हीं तीनों रूपोंकी सेवाका प्रचार भारतवर्षमें सर्वत्र देखा जाता है। बड़ी-बड़ी मिलों या मशीनोंके कारखानोंके मालिकोंसे हमारा यही अनुरोध है कि वे उक्त विष्णुतत्वके तीन रूपोंमें से किसी एककी सेवा-पद्धतिको अपनाकर जनसाधरणको उनका प्रसाद वितरण करें। ऐसा करनेसे धनिकों और श्रमिकोंमें परस्पर विवादोंका अन्त हो जायगा। क्योंकि ऐसी सेवासे धनिक और श्रमिक दोनों ही कर्मयोगी बन जायेंगे।

कारखानोंके मजदूर अधिकतर स्वभावकी निर्मलताकी रक्षा नहीं कर पाते और क्रमशः समाजके निम्न स्तरमें गिर जाते हैं। ऐसे तमोगुण-सम्पन्न व्यक्तियोंके द्वारा किसी प्रकार भी समाजका कल्याण नहीं हो सकता। इसलिए यदि इन मजदूरोंको उनके मालिक यज्ञावशिष्ट भगवत् प्रसाद वितरण करें तो ऐसे प्रसाददाता मालिक एवं प्रसाद-ग्रहीता मजदूर दोनोंमें क्रमशः भगवद्भाव उदित होकर समाजके सभी वर्गोंमें परस्पर बन्धुत्व भाव स्थापित होगा। इसके विपरीत यदि किसी स्वार्थके वशीभूत होकर ऐसी स्वजातीय भावना देखी जाती है तो वह क्षण-भंगुर और विषज्जनक है। जो लोग किसी स्वार्थ के लिए इन स्वभावभ्रष्ट मजदूरोंको उत्तेजित करते हैं, वे अपना या इन मजदूरोंका किसी भी प्रकारसे उपकार नहीं कर सकते। इसके विपरीत ऐसे कार्योंसे मजदूर पूँजीपतियोंके शत्रु बन जाते हैं। फलस्वरूप पूँजीपति, मजदूर, समाज और देश सबका अहित होता है। विष्णु-विद्वेषी चेष्टासे श्रमिकसंघ और मालिकसंघ दोनों ही तर्क परायण हो पड़ते हैं और परस्पर शत्रुताका भाव पोषणकर जगत्में कई प्रकारकी जटिल समस्याएँ पैदा कर देते हैं। साम्यवादी समाजतंत्रीगण जिस साम्यवादका प्रचार करनेके लिए प्रचुर अर्थ, प्रचुर बुद्धि व्यय करते हैं यहाँ तक कि अपने प्राणोंका भी विसर्जन कर देते हैं, स्टालिन-वादी जिस साम्यवादके बल पर जिन बड़ी-बड़ी

अट्टालिकाओंका सुख स्वप्न देखते हैं और जिस साम्यवादके लिए मजदूर संघबद्ध होकर धनियोंके प्रति जैसा व्यवहार करते हैं, इन सभी जटिल समस्याओंका एकमात्र सहज समाधान कर्मयोग या यज्ञके लिए कर्म करना ही है।

मानव समाजके आत्मीयता-विकासके सूचना स्वरूप जिस Unesco की सृष्टि हुई है, उसका मूल आधार गृहस्थी है। गृहस्थीसे समाज, समाजसे सम्प्रदाय, सम्प्रदायसे ग्राम, ग्रामसे देश, देशसे महादेश इत्यादि तक प्रसारित होता है। इस प्रसारण क्रिया द्वारा ही Unesco की सूचना पायी जा रही है। इस प्रकारकी प्रसारण क्रियाका जो मूलाधार है, उसकी ओर हमें ध्यान देना चाहिए। इस प्रसारण क्रियाको संकोचित करने पर हम अपने शरीरकी ओर लक्ष्य करते हैं। हमारे शरीरमें इन्द्रियाँ प्रधान हैं। इन्द्रियोंसे मन प्रधान है, मनसे बुद्धि प्रधान है एवं बुद्धिसे अहङ्कार श्रेष्ठ है। उस अहङ्कारसे भी जो श्रेष्ठ है, वही मैं हूँ। मेरा वह शुद्ध-चेतन स्वरूप विष्णुतत्त्वका अंश है। इसलिए विष्णुतत्त्व ही सम्पूर्ण जगतका मूल आकर्षण या केन्द्रीय तत्त्व है। इसलिये प्रह्लाद महाराजने कहा है कि—'न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुं दुराशया ये बहिरर्थमानिनः।'

(भा० ७।५।३१)

जो केन्द्रच्युत होकर बहिर्जगतका दर्शन करते हैं वे बहिरर्थमानी दुराशय-विशिष्ट हैं। ऐसे दुराशय-युक्त व्यक्ति अन्धे हैं। इसलिए उनके द्वारा जगतका कोई हित नहीं हो सकता। वे अन्धे जितना ही दूसरे अन्धोंके उपकारकी छलना क्यों न करें, वे मूलतः भगवानके कानून द्वारा (by the will of providence) विशेषरूपसे बँधे हुए हैं। अतएव हमें यह जानना आवश्यक है कि विष्णुतत्त्व ही इस दृश्य जगतके मूलीभूत केन्द्र हैं और उस विष्णुतत्त्वके सर्वश्रेष्ठ प्रकाश हैं—श्रीकृष्ण।

गीतामें (७।७) कहा गया है—"मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनंजय।" इसलिए वह अद्वय-ज्ञान मूलकेन्द्र एकमात्र श्रीकृष्ण ही हैं। क्योंकि वे ही समस्त चराचर वस्तुओंके मूल आकर्षक हैं। शास्त्रोंमें हमारे पूर्व-पूर्व महाजनोंने श्रीकृष्णको ही समस्त विष्णुतत्त्वके मूल पुरुषके रूपमें प्रतिपादन किया है। विष्णुतत्त्व स्वरूपतः एक होने पर भी सिद्धान्तकी दृष्टिसे कोई अंश हैं, कोई अंशके अंश या कला हैं। इन सभी विष्णुतत्त्वोंकी आलोचना पृथक् रूपसे आगेकी जायगी। परन्तु हमें अभी यही जानना है कि श्रीकृष्ण ही परमेश्वर हैं।

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥

(ब्रह्म संहिता ५।१)

इसलिए उन्हीं आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्णको केन्द्र बनाकर हमें पारस्परिक बन्धुत्वका सम्बन्ध रखना चाहिए। तभी हम इस मायाको पारकर आत्म-स्वरूपमें पुनः स्थित हो सकते हैं। कृष्ण सम्बन्धयुक्त होकर ही हम Fraternity, Equality आदि का तात्पर्य समझ सकते हैं।

भगिनीको केन्द्रित कर ही भगिनीका पति—जिस-के साथ पहले कोई सम्बन्ध नहीं था, भगिनीपति कहलाता है। उसका पुत्र—भानजा, पुत्री—भानजी कहलाती हैं। उसीप्रकार देशको केन्द्रित कर कोई-कोई बंगाली, कोई पंजाबी या दूसरे जातिगत नामोंसे परिचित होते हैं। ऐसे अपूर्ण परिचयसे हम चाहें

जितने ही परिचित क्यों न हों, या इस रूपसे अपने को जितना ही प्रसारित करनेकी चेष्टा क्यों न करें, वे समस्त चेष्टाएँ क्षुद्र और अपूर्ण ही रह जायेंगी। उस विराट पुरुषके अंशके रूपमें हमारी सेवा चेष्टा न रहनेसे हम स्थानभ्रष्ट होकर अधःपतित हो जायेंगे। जैसे हमारे शरीरका कोई अंश अपने निर्दिष्ट कार्य करनेमें असमर्थ होता है तो उस अंश या अङ्गका कोई मूल्य नहीं रह जाता। अतएव हमारे सभी कार्योंमें मूल पुरुष कृष्णको ही केन्द्रित न करने से सब कुछ व्यर्थ हो जाता है। कृष्णको केन्द्र कर हम सभी कार्ष्ण या कृष्णदास हैं। इस स्वभाव सिद्ध उपलब्धिके अभावमें हमें कई प्रकारके क्लेश मिलते हैं और हमारा अधःपतन होता है। इसलिए उसी नित्यसिद्ध स्व-स्वभावको पुनः उदय कराना ही मनुष्य जीवनका एकमात्र कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य कर्म करनेके लिए कर्मयोग ही प्रथम सोपान है।

कृष्ण-नित्यदास जीव ताहा भूलि गेल।
एइ दोषे माया तार गलाय बाँधिल॥
(चै० च० म० २२।२४)

जीव कृष्णका नित्यदास है तथा तत्त्वतः विभिन्नांश है—इस नित्य सत्यको प्रकाशित करनेके लिए कर्मयोगी कुशलताके साथ मूर्ख कर्मसंगियोंकी बुद्धि का भेद न करके उनका भी परम उपकार कर सकते हैं।

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्।
योषयेत् सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्॥
(गीता ३।२६)

कर्मसंगियोंको कृष्णदास्यमें नियुक्त करना बहुत कठिन है, क्योंकि उनमेंसे अधिकांश ही मूढ़, अधम और दुष्कृतिसम्पन्न होते हैं। इसलिए उनके असंयत स्वेच्छाचार प्रभावित आसुरिक कार्योंके द्वारा उनकी विद्याबुद्धि पूर्णरूपसे भगवद्विद्वेषमें ही नियुक्त होती है। वे स्वयं माया कवलित होकर स्व-कपोल-कल्पित कृष्णके अथवा शिशुपालके आनुगत्यमें कृष्णका प्रतियोगी बनकर जगतको भोग करने की चेष्टा करते हैं। उनकी यह मिथ्या भोगाशा माया कल्पित है। ये सभी भोग कल्पनाएँ उन्हें खूब ठगती हैं। फिर भी अपहृतज्ञान मूढ़ कर्मीगण विषय भोगकी दुराशा का परित्याग नहीं कर पाते। अपने कर्मकी असफलता देखकर वे त्यागकी जो छलना करते हैं, वह भी माया कल्पित एक बृहत् भोगकी कल्पना मात्र है।

फल भोगाकांक्षी कर्मीगण बहुकष्ट साध्य कर्मोंके अनुष्ठानकालमें माया कल्पित साँड़ की भाँति भ्रमण करते हैं, वे मन-ही-मन अपनेको भोक्ता समझते हैं। ऐसे विकारग्रस्त मतिभ्रान्त कर्मसंगियोंकी बुद्धिको और भी उलझनमें न डालकर, वे जिन-जिन कर्मोंमें प्रवीण हैं, उन्हें उन्हीं कर्मोंमें नियुक्तकर कृष्ण सम्बन्ध कराना ही बुद्धिमानीका कार्य है। ऐसे कार्यके द्वारा ही उनका नित्यसिद्ध कृष्ण सम्बन्ध क्रमविकास की ओर अग्रसर होगा। यही विद्वानोंका कर्मकौशल है। इसलिए कर्म बन्धनमुक्त कृष्णदासगण लोक-शिक्षा के लिए स्वयं साधरण आसक्ति-सम्पन्न कर्मीकी तरह कर्म करते हुए कर्मयोगका आचरण करते हैं। (क्रमशः)

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज

उपनिषद्-वाणी

बृहदारण्यक (२)

किसी समय याज्ञवल्क्य ऋषिने अपनी पत्नी मैत्रेयीसे कहा—"अरी मैत्रेयी ! मैं संन्यास ग्रहण करूँगा। अतएव मैं अपनी विषय-सम्पत्तिको तुम्हें और कात्यायनीको बाँटकर दे देना चाहता हूँ।"

पतिकी बात सुनकर मैत्रेयी बोली—"स्वामिन् ! यदि पृथ्वीकी सारी सम्पत्ति मुझे मिल जाय, तो क्या उससे मैं मृत्युका अतिक्रम कर अमर हो सकती हूँ ?"

याज्ञवल्क्यजी बोले—"नहीं, धनके द्वारा अमृतत्वकी आशा तो नहीं है, तब भोग सामग्रियोंसे सम्पन्न मनुष्यों जैसा तेरा भी जीवन हो जायगा।"

मैत्रेयी बोली—"जिससे मैं अमर नहीं हो सकती, ऐसे भोगोंको लेकर क्या करूँगी ? आप जिस लिये संन्यास ग्रहण कर रहे हैं, आप मुझे भी उसी विषयका उपदेश प्रदान करें।"

याज्ञवल्क्यजी बोले—संसारमें परस्पर जो प्रीति देखी जाती है, वह स्वार्थपूर्ण है। पतिके प्रयोजनके लिये पति प्रिय नहीं होता, परन्तु अपने ही आत्मसुखके पति प्रिय होता है। स्त्रीके प्रयोजनके लिये स्त्री प्रिया नहीं होती, अपने ही प्रयोजनके लिये स्त्री प्रिया होती है। पुत्रके प्रयोजनके लिये पुत्र प्रिय नहीं होता—धनके प्रयोजनके लिये धन प्रिय नहीं होता, ब्राह्मणके प्रयोजनके लिये ब्राह्मण प्रिय नहीं होता, क्षत्रियके प्रयोजनके लिये क्षत्रिय प्रिय नहीं होता, देवताओंके प्रयोजनके लिये देवता प्रिय नहीं होते, अथवा प्राणियोंके प्रयोजनके लिये सभी प्राणी प्रिय नहीं होते; सर्वत्र आत्मप्रीति ही प्रधान कारण है। अपने ही प्रयोजनके लिये सब प्रिय होते हैं। परन्तु वह आत्मा कौन है?—इस विचारमें अधिकतर भूल हो जाती है। अतएव आत्माको जानना आवश्यक है। आत्मा ही दर्शनीय है, श्रवणीय है, मननीय है और ध्यानयोग्य है। आत्माके दर्शन, श्रवण, मनन एवं विज्ञान से इन सबका ज्ञान होता है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, देवगण, या भूतगण उसे परास्त करते हैं, जो उन्हें आत्मासे भिन्न समझता है। जगत जो कुछ देखा जाता है, वह सभी आत्मसम्बन्धीय है।

बजते हुए दुन्दुभि (नक्कारे) के बाह्य शब्दोंको कोई पकड़ नहीं सकता, परन्तु उसके आघातको पकड़ लेनेसे उसका शब्द भी पकड़ लिया जाता है अर्थात् फिर ध्वनि नहीं होती। बजाये हुए शंखके शब्दोंको कोई पकड़ नहीं सकता, किन्तु उसके मुख को बन्द कर देने से फिर ध्वनि नहीं होती। बजते हुए वीणाके शब्दोंको पकड़ा नहीं जा सकता, किन्तु वीणाके स्वरको बन्दकर देनेसे उसमेंसे और ध्वनि नहीं निकलती। उसी प्रकार मूलवस्तु परमात्माको जाननेसे उनसे प्रकटित सभी वस्तुओंका ज्ञान अपने आप ही हो जाता है। आगमें गीला ईन्धन देने से उसमेंसे धूआँ निकलकर आगको देखने नहीं देता; धूआँ ही धूआँ दिखाई देता है, उसी प्रकार अविद्या या मायाग्रस्त जीव परमात्माको दर्शन करनेमें असमर्थ है। आगका धूआँ अविद्याके समान है। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद, रामायण

महाभारतादि इतिहास, और अठारह पुराण—सभी परमात्माके निश्वास स्वरूप हैं। अर्थात् ये सभी अपौरुषेय हैं। ये किसी मनुष्य द्वारा रचित होने पर भ्रम-प्रमादादि दोषयुक्त होते। किन्तु परमात्मासे ही सभी वेद प्रकाशित हैं। सम्पूर्ण जलका एकमात्र आश्रय समुद्र ही है। जिस प्रकार स्पर्शका आश्रय त्वचा है, गन्धका आश्रय नाक है, रसका आश्रय जिह्वा है, सभी रूपोंका आश्रय नेत्र हैं, समस्त शब्दों का आश्रय कान है, समस्त संकल्पका आश्रय मन है, समस्त विद्याका आश्रय हृदय है, समस्त कर्मोंका आश्रय हाथ है, समस्त आनन्दका आश्रय उपस्थ है, समस्त विसर्जनका आश्रय पायु है, समस्त मार्गका आश्रय पैर है, उसी प्रकार वाणी ही सम्पूर्ण वेदोंका एकमात्र आश्रय है।

जिस प्रकार जलमें नमकका एक टुकड़ा दे देने से वह गल जाता है, और ढूँढ़नेपर भी नहीं मिलता, परन्तु जलका स्वाद नमकीन जान पड़ता है, उसी प्रकार परमात्मा सभी प्राणियोंमें व्याप्त होने पर भी वे अनन्त, अपार और विज्ञानघन हैं। इसलिये उन्हें कोई जान नहीं पाता। किन्तु साधनके द्वारा उन्हें जाना जा सकता है। अविद्याग्रस्त जीव परमात्माका दर्शन न कर अन्य वस्तुको देखता है, अन्य वस्तुके गन्धको ग्रहण करता है, अन्य वस्तुका मनन करता है, अन्य व्यक्तिका अभिवादन करता है, और अन्य वस्तुको जानता है। किन्तु जब आत्माका दर्शन हो जाता है, तब भगवदतिरिक्त द्वितीय वस्तु माया के प्रति आसक्ति नहीं रहती। जिसके द्वारा सभी वस्तु जाने जाते हैं, उसे कैसे जाना जा सकता है? विज्ञाताको कौन जानेगा?

यह पृथ्वी समस्त भूतोंका मधु है। इसमें जो तेजोमय अमृतमय पुरुष हैं, वे ही आत्मा (परमात्मा) हैं, वे ही अमृत हैं, वे ही ब्रह्म हैं, जल, अग्नि, वायु, आदित्य, चन्द्रमा, सभी दिशाएँ, विद्युत, मेघ आकाश, सभी मनुष्य और सभी प्राणियोंके वे मधु (प्रिय) हैं। किन्तु परमात्माके अधिष्ठानसे ही सभी वस्तुएँ प्रिय होती हैं। परमात्मा समस्त प्राणियोंके अधिपति या स्वामी हैं। जिस प्रकार रथकी नाभि और नेमिमें सभी आरे संयुक्त रहते हैं (पहिएके मध्यस्थलमें स्थित गोलाकृति लकड़ी, जिसमें सब लकड़ियाँ संयुक्त रहती हैं, वह नाभि कहलाती है और लकड़ियोंको अरा कहते हैं, चलित भाषामें आरा कहते हैं) उसी प्रकार समस्त भूत, समस्त देव, समस्त लोक, और सभी प्रसूणी एकमात्र परमपुरुष परमेश्वरके आश्रयमें ही विद्यमान हैं अर्थात् सभी उस परमात्मासे जुड़े हुए और उसीके सहारे स्थित हैं।

इसी मधुविद्याका दधीचि ऋषिने अश्विनीकुमारोंको उपदेश दिया था। ऋषिका उपदेश—ईश्वर अपनी मायाके द्वारा बहुतसे रूपोंमें प्रकटित हैं। शरीररूपी रथकी दस इन्द्रियाँ और एक सौ नाड़ियाँ घोड़ोंके समान हैं। परमात्मा अपूर्व (कारण रहित) हैं, अनपर (कार्यरहित) हैं, अनन्तर (विजातीय द्रव्य रहित) हैं, एवं अबाह्य (उनके बाहर कोई वस्तु नहीं हैं) हैं। वे ही सभीके अनुभवयोग्य ब्रह्म हैं। यही समस्त वेदान्तोंका अनुशासन (उपदेश) है।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौतीमहाराज

छठा परिच्छेद

जीव हरिके विभिन्नांश-तत्त्व हैं

संसारमें जीवतत्त्वके सम्बन्धमें विभिन्न प्रकारकी परस्पर विवदमान धारणाएँ हैं। जो जिस प्रकृतिका मनुष्य है, वह उसी प्रकृतिके अनुसार जीवके सम्बन्धमें एक प्रकारकी धारणा बना रखा है। तामस-प्रकृतिके लोगोंकी धारणाके अनुसार जीव—जड़गुणोंसे उत्पन्न पदार्थ है। उनके मतानुसार ऐसा जीव जड़ शरीरके साथ ही पंचत्वको प्राप्त हो जाता है। रजस्तमोमिश्र प्रकृतिवाले लोग केवल मनुष्यको ही जीव कहते हैं; वे मनुष्यके अतिरिक्त अन्यान्य पशु-पक्षी आदि प्राणियोंको जीव नहीं मानते। उनके अनुसार पशु आदि जीव-प्राय हैं। और जीवोंके (मनुष्योंके) केवल भोग्यमात्र हैं। भगवत् पार्षदगण जीवसे कुछ उच्च तत्त्व हैं। वे मनुष्यके पूर्वजन्म और परजन्मको नहीं मानते। किसीका जन्म समृद्ध परिवारमें और किसीका सर्वप्रकारसे दुःखी और दरिद्र परिवारमें, कोई सर्व प्रकारसे सुन्दर और कोई जन्मान्ध, लंगड़ा, लूल्हा पैदा होता है। ऐसा क्यों होता है—वे इस विषयमें कुछ भी नहीं कह सकते। राजस मनुष्य, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सबको जीव मानते हैं; परन्तु जीवकी लोकगति (स्वर्गादि) के अतिरिक्त शुद्धचिद्गतिके प्रति श्रद्धा नहीं रखते। रजःसत्वमिश्र मानव, जीवोंकी लोकगति तक तो विश्वास करते हैं; परन्तु वे लोग जीवोंकी शुद्ध चिद्गतिमें उतनी श्रद्धा नहीं रखते। सात्त्विक मनुष्य जीवोंकी निर्भेद ब्रह्मगति तक विश्वास करते हैं। मायाके गुणोंसे मोहित मानवोंका विचार जीव तत्त्वके सम्बन्धमें यहीं तक सीमित होता है। मायाके तीनों गुणोंको भेद कर जो निर्गुण विचार करनेमें समर्थ होते हैं, वे श्रीचैतन्यचरितामृतके निम्नलिखित वचनोंको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं—

'मायाधीश', 'मायावश',—ईश्वरे जीवे भेद।
हेन जीवे ईश्वर-सह कहत अभेद?
गीताशास्त्रे जीवरूप 'शक्ति' करि माने।
हेन जीवे 'अभेद' कर ईश्वरेर सने॥
जीवेर 'स्वरूप' हय कृष्णेर 'नित्यदास'।
कृष्णेर तटस्था-शक्ति, भेदाभेद-प्रकाश॥
सूर्यांशु-किरण, जेन अग्निज्वालाचय।

× × ×

कृष्ण भूलि सेइ जीव—अनादि बहिर्मुख।
अतएव माया तारे देय संसार-दुःख॥
मायासंग-विकारे रुद्र—भिन्नाभिन्न रूप।
जीव तत्त्व हय, नहे कृष्णेर 'स्वरूप'॥
दुग्ध जेन अम्लयोगे दधिरूप धरे।
दुग्धान्तर वस्तु नहे, दुग्ध हैते नारे॥
स्वांग-विशेषाभासरूपे प्रकृति-स्पर्शन।
'जीव' रूप 'बीज' ताते कैला समर्पण॥
स्वांश-विस्तार—चतुर्व्यूह, अवतारगण।
विभिन्नांश जीव—तांर शक्तिते गणन॥

सेइ विभिन्नांश जीव—दुई त प्रकार ।
एक—नित्यमुक्त, एक—नित्य-संसार ॥
(मध्य ६।१६२-१६३, मध्य २०।१०८-१०९, ११७,३०८-३०९, २७३, मध्य २२।९-१०)

सात्त्विक ज्ञान-सम्पन्न मनुष्य जड़ीय ज्ञानके व्यतिरेक अनुशीलन द्वारा ऐसा सिद्धान्त करते हैं कि वास्तवमें ब्रह्म और जीवमें भेद नहीं है। इनमें भी तीन सम्प्रदाय हैं। पहले सम्प्रदायके मतानुसार इस संसारमें जो ब्रह्म और जीवमें भेद दिखलाई पड़ रहा है, वह मिथ्या है; वह केवल मायिक प्रतीतिमात्र है अर्थात् मायाद्वारा आच्छादित होनेके कारण ऐसी प्रतीतिमात्र हो रही है वास्तवमें जीव ब्रह्म ही है। जिस प्रकार महाकाश और घटाकाश वास्तवमें एक ही है, परन्तु वही महाकाश अध्यासद्वारा (घटके ऊपरका आकाश) घटाकाशके रूपमें प्रतीत होता है; उसी प्रकार मायाके कारण ही भ्रमसे जीव और ब्रह्मका भेद सा दिखलायी पड़ता है; वस्तुतः दोनों एक ही हैं। अविद्या तिरोहित होने पर भ्रम दूर हो जाता है। उस समय जीवत्वरूप अहंकार दूर हो जाता है और केवल महाकाश स्वरूप ब्रह्म ही रहता है। इस मतका नाम परिच्छेद-परिच्छिन्नवाद है। दूसरे सम्प्रदायका मत यह है कि ब्रह्म—बिम्ब है और जीव—अविद्यामें उसी बिम्बकी प्रतिबिम्ब प्रतीतिमात्र है। वास्तवमें जीव नहीं है। अविद्या मायाशक्तिकी एक वृत्ति है। अविद्याजनित भ्रम दूर होने पर जीवका जीवत्व-निर्वाण हो जाता है। तीसरे सम्प्रदायका कथन यह है कि वास्तवमें कुछ भी नहीं हुआ है। माया भ्रम-नामक एक उपद्रव है। इसीसे भेदकी प्रतीति हो रही है। भलीभाँति विचार करनेसे स्पष्टरूपसे ही समझा जा सकता है कि उपर्युक्त मत-समूह वागाडम्बर मात्र हैं अथवा तर्कद्वारा उत्पन्न हुए हैं, जो विरोधी तर्ककुशलता द्वारा सहज ही नष्ट हो जाते हैं। ये सभी वाद वेदके एकदेशीय विचारका अवलम्बन कर उत्पन्न हुए हैं—ये वेदके सर्वदेशीय पूर्ण सिद्धान्त नहीं हैं। वेदका सिद्धान्त यह है कि ईश्वर स्वभावतः मायाके अधीश्वर हैं तथा जीव स्वभावतः मायावश है अर्थात् मायाद्वारा वशीभूत होने योग्य तत्त्व है। वेद कहते हैं—

अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत् तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः मायान्तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनन्तु महेश्वरम् ॥ (श्वेताश्वतर ४।९ १०)

मायाधीश ईश्वरने मायाद्वारा इस जड़ जगतका सृजन किया है। इस जड़जगतमें ईश्वरसे भिन्न एक तत्त्व—जिसे जीव कहते हैं, मायाद्वारा बँधा हुआ है। माया परमेश्वरकी एक शक्ति है। मायाधीश पुरुष ही परमेश्वर हैं। ऐसा जीव किसी भी अवस्थामें ईश्वरके साथ अभेद नहीं है। गीतामें जीवको शक्ति कहा गया है। इसलिए उसे केवल अभेद नहीं कहा जा सकता है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे परां ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥
(गीता ७।४-५)

भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश—ये पाँच स्थूल जड़ एवं मन, बुद्धि और अहंकार—ये तीन

सूक्ष्म-जड़, कुल आठ प्रकारकी मेरी भिन्न स्वरूपा अपरा या माया प्रकृति है। इससे पृथक् मेरी और भी एक पराप्रकृति जीव स्वरूपा है। मेरी इस जीव स्वरूपा परा-प्रकृति द्वारा यह जगत परिपूर्ण है। जीवका स्वरूप कृष्णदास है; कृष्णकी तटस्था शक्ति है तथा कृष्णका वह भेदाभेद प्रकाश है। जो शक्ति चित् और अचित् दोनों ही जगतोंके लिए उपयोगी है उसीका नाम तटस्था है। वह कृष्णका भेदाभेद प्रकाश है अर्थात् कृष्णसे उसका एक ही साथ भेद भी है, अभेद भी है; केवल भेद या केवल अभेद ही नहीं है। बृहदारण्यक में कहते हैं—

तस्य वा एतस्य पुरुषस्य द्वे एव स्थाने भवत इदंच परलोकस्थानञ्च सन्ध्यं तृतीयं स्वप्नस्थानं। तस्मिन् सन्ध्ये स्थाने तिष्ठन्नेते उभे स्थाने पश्यतीदञ्च परलोकस्थानञ्च। (४।३।९)

—उस जीव पुरुषके दो स्थान है अर्थात् यह जड़ जगत् और अनुसंधेय चित् जगत्; जीव उन दोनोंके बीच अपने संध्य तृतीय स्वप्नस्थान पर स्थित है। वह दोनों जगतोंके मिलन स्थान पर (तट पर) स्थित होकर जड़ विश्व और चिद्विश्व दोनोंको ही देखता है।

बृहदारण्यकमें भी कहते हैं—

तद्यथा महामत्स्य उभे कूलेऽनुसञ्चरति पूर्वञ्च परञ्चैवमेवायं पुरुष एतावुभावन्तावनुसञ्चरति स्वप्नान्तञ्च बुद्धान्तञ्च। (बृहदारण्यक ४।३।१८)

वह तटस्थ धर्म इस प्रकार है। जैसे एक बड़ी मछली नदीमें तैरती हुई कभी नदीके पूर्व तट पर, कभी पश्चिम तट पर अर्थात् दोनों ओर के तटों पर विचरणकरती है, उसी प्रकार जीव पुरुष कारण-समुद्रके दोनों ओरके दो तटों अर्थात् जड़ जगत् और चिद् जगत् दोनों जगतोंमें (स्वप्नान्त और बुद्धांत दोनों किनारोंमें) संचरण करते हैं।

तटस्था शक्तिसे प्रकटित जीवसमूह परमेश्वर से उत्पन्न होने पर भी पृथक् सत्तावाले होते हैं। सूर्यके किरणगत परमाणु या अग्निकी चिनगारी ही जीवका उपमास्थल है। बृहदारण्यकमें ऐसा कहा गया है—

यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिंगा व्युच्चरन्तिः एवमेवास्मादात्मनः × × × सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति।

(२।१।२०)

जिस प्रकार अग्निसे विस्फुलिंगें निकलती हैं, उसी प्रकार सर्वात्मा कृष्णसे जीव-समूह प्रकटित हैं। इससे यह स्थिर होता है कि तटस्थ धर्मवशतः माया और चिद् दोनोंके लिये उपयोगी जो विभिन्नांश अणुचेतन समूह उदित हुए हैं; वे मूल आत्म-स्वरूप कृष्णके अनुगत-सत्ता विशेष हैं। वे चिद् और जड़ जगतोंके बीच तट रेखा पर खड़े होकर दोनों जगतोंकी ओर देखते हैं। उस समय उनके अन्दर भोगकी कामना उत्पन्न होती है, तो तत्क्षण ही वे चित् सूर्य कृष्णसे विमुख हो पड़ते हैं। साथ ही निकटस्थ माया उसे भोगायतन स्थूल-सूक्ष्म शरीर प्रदान कर संसारके जीवन-मरणके प्रवाहमें डाल देती है। उनकी वह कृष्ण बहिर्मुखता अनादि है; क्योंकि वह प्राकृतकाल उत्पन्न होनेके पहले ही घटित होती है। अपनी स्वतन्त्रताका अपव्यवहार रूप अपराध ही उनकी वैसी अवस्थाका कारण है। उनकी इस दुर्दशा के लिए श्रीकृष्णमें किसी प्रकारसे भेदभावका आरोप

नहीं किया जा सकता है; क्योंकि परम कौतुकी कृष्णने जीवोंको स्वतन्त्रता नामक दिव्य रत्न दिया है और वे स्वयं उनकी स्वतन्त्रतामें कभी भी हस्तक्षेप नहीं करते। यदि जीव अपनी स्वतन्त्रताका असद्व्यवहार करता है, तब कारणार्णवशायी महाविष्णु स्वांग-विशेषाभासरूपसे प्रकृतिका स्पर्श करते हैं तथा उसी समय प्रकृतिके अन्दर उपरोक्त भगवद्विमुख जीवों का बीज अर्पण करते हैं। (चै. च. म. २०।२७३ संख्या द्रष्टव्य है) कृष्ण स्वयं प्रकृतिका स्पर्श नहीं करते; बल्कि महाविष्णुके रूपमें प्रकृतिको इक्षण-पूर्वक अपराधी जीवोंको प्रकृतिमें समर्पण करते हैं। तत्पश्चात् माया प्रकृति अपराधी जीवोंको विभिन्न प्रकारके सांसारिक दुःख देकर उसे दण्ड प्रदान करती है। भगवानके अंश दो प्रकारके होते हैं अर्थात् स्वांश और विभिन्नांश। चतुर्व्यूह और अवतार-समूह ये सब स्वांश-विस्तार हैं। जीव—विभिन्नांश हैं। स्वांश और विभिन्नांशमें भेद यह है कि स्वांशगण कृष्ण तत्त्वके साथ अभिन्न अभिमान द्वारा सदा-सर्वदा सर्वशक्तिसम्पन्न होते हैं तथा कृष्णकी इच्छा ही उनकी इच्छा होती है, उनमें कोई स्वतंत्रता नहीं होती। परन्तु विभिन्नांश जीव कृष्णतत्त्वसे नित्य भिन्नाभिमानी होते हैं। अपने क्षुद्र स्वरूपके अनुरूप ही क्षुद्रशक्तिसम्पन्न होते हैं और कृष्णकी इच्छासे उनकी इच्छा पृथक् होती है। कृष्णसे ऐसे-ऐसे अनन्त जीव निकलने पर भी कृष्ण घटते नहीं अर्थात् उनकी पूर्णताकी हानि नहीं होती। जीवोंका कृष्ण-बहिर्मुखतारूप अपराध मायामें प्रवेश करनेसे पूर्व ही घटित होता है। अतएव मायिक काल प्रारम्भ होनेके पहलेसे अपराधका मूल विद्यमान रहनेके कारण "अनादि बहिर्मुखता" का प्रयोग होता है। माया संगरूप विकार द्वारा रुद्रदेव भी भेदाभेद-स्वरूप हैं; अतएव वे कृष्ण-स्वरूप नहीं हैं। अम्लके योगसे दूध दही हो जाता है; दधि, दुग्धसे अतिरिक्त कोई दूसरा पदार्थ नहीं है; फिर भी दही को दूध नहीं कहा जा सकता है (चै. च. म. २०।३०७-३०६) श्रीजीव गोस्वामी धृत परमात्मसन्दर्भ १६ संख्यामें श्रीजामातृ मुनि-प्रदर्शित पद्मोत्तर वचन—

ज्ञानाश्रयो ज्ञानगुणश्चेतनः प्रकृतेः परः ।
न जातो निर्विकारश्च एकरूप-स्वरूपभाक् ॥
अणुर्नित्योव्याप्तिशीलश्चिदानन्दात्मकस्तथा ।
अहमर्थोऽव्ययः क्षेत्री भिन्नरूपः सनातनः ॥
अदाह्योऽच्छेद्योऽक्लेद्य अशोष्याक्षर एव च ।
एवमादिगुणैर्युक्तः शेषभूतः परस्य वै ॥

—जीव ज्ञानाश्रय, ज्ञानगुण, चेतन, अप्राकृत, जन्मरहित, निर्विकार, स्वरूपतः एकरूपविशिष्ट, अणु, नित्य, व्याप्तिशील, चिदानन्दात्मक, अहमर्थ, अव्यय, क्षेत्री, विभिन्नरूप, सनातन, अदाह्य, अच्छेद्य, अशोष्य और अक्षर है। इन सब गुणोंसे युक्त होकर वह भगवानका दासस्वरूप-तत्त्व है।

ज्ञानाश्रय = ज्ञानी; ज्ञानगुण = ज्ञान ही जिसका गुण है; अप्राकृत = प्रकृतिसे परे, जड़ शरीरकी प्राप्ति और जन्म या विकारसे रहित; अणु = जड़ परमाणु से भी सूक्ष्म; व्याप्तिशील = जड़ शरीरमें सर्वत्र व्याप्त; अहमर्थ = 'मैं' शब्दवाच्य; क्षेत्री = जड़ देह रूप क्षेत्र का स्वामी; विभिन्नरूप = भगवानसे पृथक् एवं अक्षर = क्षर धर्म रहित = नाश रहित = एकरूप रहनेवाला। पञ्चरात्रमें श्रीनारदजीने कहा है—

'यत्तटस्थं तु चिद्रूपं स्वसंवेद्याद्विनिर्गतम् ।'

अर्थात् चित् शक्तिसे निकला हुआ चित् कण-जीव तटस्थ है। तटस्थ शक्तिको स्पष्ट करते हुए जीव गोस्वामीजी कहते हैं—

तटस्थत्वञ्च मायाशक्त्यतीतत्वात् अस्याविद्या पराभवादिरूपेण दोषेण परमात्मनो लेपाभावाश्च उभयकोटावप्रविष्टेस्तस्य तच्छक्तित्वे सत्यपि परमात्मनस्तल्लेपाभावश्च यथा क्वचिदेकदेशस्थे रश्मौ छायया तिरस्कृतेऽपि सूर्यस्यातिरस्कारस्तद्वत्।

(परमात्मसन्दर्भ—३७ संख्या)

तात्पर्य यह कि तटस्था कही जानेवाली जीवशक्ति मायाशक्तिसे पृथक है; अतएव वह माया-कोटिमें नहीं आती। दूसरी ओर अविद्याके वशीभूत होनेके कारण जीव अविद्यासे सदा निर्लेप रहने वाले परमात्माकी कोटिमें भी नहीं परिगणित होता। परमात्माकी शक्ति होने पर भी अविद्याका लेप परमात्माको उसी प्रकार स्पर्श नहीं करता, जिस प्रकार एकदेशीय सूर्य-रश्मि छाया द्वारा आच्छादित होने पर भी, सूर्य आच्छादित नहीं होते।

जीव दो प्रकारके हैं—नित्यबद्ध और नित्यमुक्त। श्रीजीव गोस्वामी कहते हैं—

तदेवमनन्ता एव जीवख्यास्तटस्थाः शक्तयः। तत्रतासां वर्गद्वयं। एकोवर्गोऽनादित एव भगवदुन्मुखः अन्यस्त्वनादित एव भगवत्परांमुखः स्वभावतस्तदीय ज्ञानभावात्तदीयज्ञानाभावाच्च। तत्र प्रथमोऽन्तरङ्गा शक्ति विलासानुगृहीतो नित्य-भगवत् परिकररूपो गरुडादिकः। अस्य च तटस्थत्वं जीवत्वप्रसिद्धेरीश्वरत्वं कोटावप्रवेशात्। अपरस्तु तत्पराङ्मुखत्व-दोषेण लब्धछिद्रया मायया परिभूतः संसारी।

(परमात्मसन्दर्भ, संख्या ४७)

तात्पर्य यह है कि जीव अनन्त हैं। वे दो वर्गोंमें विभक्त हैं। एक वर्ग अनादिकालसे भगवानसे विमुख है। दूसरा वर्ग अनादिकालसे भगवदुन्मुख अर्थात् भगवानकी सेवामें तत्पर है। एक भगवत् सम्बन्धज्ञानके अभावके कारण भगवद्-विमुख है, तो दूसरा भगवत् सम्बन्धज्ञान द्वारा भगवदुन्मुख है। भगवदुन्मुख जीव अन्तरङ्गा-शक्तिके अनुगृहीत नित्य-भगवत्पार्षदवर्ग हैं, जैसे गरुड़ आदि। वे ईश्वरकी श्रेणीमें नहीं आते—यह शास्त्र प्रसिद्ध है; अतएव तटस्थ हैं। दूसरा वर्ग भगवत्-विमुखताके कारण अन्तरङ्गाशक्तिकी सहायतासे वंचित होता है। इसलिए ऐसे जीवोंकी इस कमजोरीको देखकर मायाने उनपर आक्रमण कर, उन्हें हराकर (उन्हें वशीभूत कर) संसार रूपी कारागारमें डाल दिया है। इस विषयमें सिद्धान्त स्वरूप ये निम्नलिखित कारिकाएँ हैं—

चित्सूर्यः परमात्मा वै जीवाश्चित्-परमाणवः।
तत्किरणकणाः शुद्धाश्चास्मदर्थाः स्वरूपतः॥

अचिन्त्य-शक्तिसंभूत—तटस्थधर्मतः—किल।
चित्स्वरूपस्य जीवस्य मायावश्यत्व सिध्यति॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

इति यद्भगवद्वाक्यं गीतोपनिषदि श्रुतं।
जीवस्य तेन शक्तित्वे सिद्धे भेदो न सिध्यति॥

जीवो मायावशः किन्तु मायाधीशः परेश्वरः।
एतदाम्नाय-वाक्यात्तु भेदो जीवस्य सर्वदा॥

भेदाभेद-प्रकाशोऽयं युगपज्जीव एव हि।
केवलाभेदवादस्यावैदिकत्वं निरूपितं

मायावशत्व-धर्मेण मायावादो न संभवेत् ।
यतो मायाऽपराशक्तिः परया जीवनिर्मितः ॥
मायावृत्तिरहंकारो जीवस्तदतिरिच्यते ।
मायासंग-विहीनोऽपि जीवो न हि विनश्यति ॥
मायावाद-भ्रमार्त्तानां सर्वं हास्यास्पदं मतं ।
अद्वैतस्य निष्कलस्य निर्लिप्तस्य च ब्रह्मणः ॥
प्रतिबिम्बपरिच्छेदौ कथं स्यातां च कुत्रचित् ।
अद्वैतसिद्धिलाभेऽपि कथं निर्भयता भवेत् ॥
रज्जुसर्प-घटाकाश-शुक्तिरजत-युक्तिषु ।
अद्वैत-हानिरेवस्यादयथोदाहृतेषु वै ॥
ब्रह्मलीला यदा माया तदा तस्याः क्रिया कथं ।
कस्य वा स्पृहया तस्याः प्रवृत्तिरुपजायते ॥
ब्रह्मेच्छा यदि तद्धेतुः कुतस्तन्निर्विकारता ।
मायेच्छा यदि वा हेतु दुर्भाग्यं ब्रह्मणो हि तत् ॥
मायावादमसच्छास्त्रं सर्वं वेदविरुद्धकं ।
प्राकृतां युक्तिमाश्रित्य प्राकृतार्थ-विडम्बनम् ॥
अचिन्त्यशक्ति विश्वासात् ज्ञानं सुनिर्मलं भवेत् ।
ब्रह्मणि निर्विकारे स्यादिच्छा-शक्तिविशेषतः ॥
तदिच्छासम्भवा सृष्टिस्त्रिधा तदीक्षणश्रुतेः ।
मायिका जैविकी शुद्धा कथं युक्तः प्रवर्त्तते ॥
नाहं मन्ये सुवेदेति नोनवेदेति वेद च ।
श्रुतिवाक्यमिदं लब्ध्वाऽचिन्त्यशक्तिं विचारय ॥
भेदवाक्यानि लक्ष्याणि द्वासुपर्णादि सूक्तिषु ।
तत्त्वमस्यादिवाक्येषु चाभेदत्वं प्रदर्शितम् ॥
सर्वज्ञवेद-वाक्यानां विरोधो नास्ति कुत्रचित् ।
भेदाभेदात्मकं तत्त्वं सत्यं नित्यञ्च सार्थकम् ॥
एकदेशार्थमाश्रित्य चान्यदेशार्थ-कल्पनम् ।
मतवादप्रकाशार्थं श्रुतिशास्त्र-कदर्थनम् ॥
कर्म-मीमांसकानां यद्विज्ञानं श्रुतिनिन्दनम् ।
मूर्खत्वमेव तेषां तत् ग्राह्यं तत्त्वविज्जनैः ॥
विभिन्नांशो हि जीवोऽयं तटस्थशक्ति-कार्यतः ।
स्व स्वरूप-भ्रमादस्य माया-कारागृह-स्थितिः ॥

परमात्मा चित् सूर्य हैं। जीव समूह उनके किरणोंमें विचरण करनेवाले परमाणु स्थानीय हैं। जीवका स्वरूप विशुद्ध चिन्मय है । जीव स्वरूपतः अहं—पदवाच्य हैं। परमात्माकी अचिन्त्य शक्तिसे निःसृत तटस्थ शक्तिसे प्रकटित जीवका धर्म भी सर्वदा तटस्थ होता है। साथ ही अणु होनेके कारण वह स्वरूपतः मायाके अधीन होने योग्य धर्मवाला भी होता है। "अपरेयमिति" श्लोक द्वारा भगवद्-गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने यह शिक्षा दी है कि जीव मायासे परे पराशक्ति है। अतएव परमात्मासे उसका नितान्त भेद या नितान्त अभेद नहीं है। जीव मायावश है तथा ईश्वर मायाधीश हैं—इस आम्नाय वाक्यसे यह स्पष्ट है कि जीव ईश्वरसे नित्य भिन्न तत्त्व है। अतएव जीवका ईश्वरसे युगपत् अभेद और भेद दोनों ही श्रुतिसिद्ध है। केवलाभेदवाद या केवलाद्वैतवाद अवैदिक है।

मायावश कहनेसे मायावाद नहीं होता है। मायावाद मतके अनुसार जीव माया द्वारा परिच्छन्न या प्रतिबिम्बित एक अनित्य तत्त्व है। मायावश कहनेसे यह स्थिर होता है कि 'माया'—शब्द शून्य चित्कण जीव अपने अणुत्वके कारण मायाद्वारा पराभूत होने योग्य है। माया अपराशक्ति है; परन्तु जीव पराशक्ति द्वारा निर्मित है। जड़-अहंकार माया की वृत्ति है। जीव उससे परे अर्थात् चिन्मय पदार्थ है। मायामुक्त होने पर भी जीवका जीवत्व नष्ट नहीं होता। मायावाद एक भ्रम है । ऐसे भ्रममें पड़े हुए

लोगोंका मत सर्वतोभावसे हास्यास्पद है। उनके मतानुसार ब्रह्म अद्वैत है, निष्कल है और निर्लेप है। यदि इस सिद्धान्तको मान लिया जाय तो फिर प्रतिबिम्ब या परिच्छेद किसका और कैसे सम्भव हो सकता है?

पुनः अद्वैत सिद्धिमें जीवकी निर्भयता कैसे हो सकती है? अद्वैतवादी जो रज्जुमें सर्प भ्रम, घटाकाश, शुक्तिमें रजत-भ्रम आदि उदाहरण दिया करते हैं, वे निरर्थक ही होते हैं, क्योंकि उन उदाहरणोंसे अद्वैतकी सिद्धि होना तो दूर रहे, अद्वैतका खण्डन ही होता है। यदि मायाको ब्रह्मकी लीला-प्रकृति मानते हैं, तो भी केवल-अद्वैतता नहीं सिद्ध नहीं होती; क्योंकि एक ब्रह्म और दूसरी माया—ये दो तत्त्व हो पड़ते हैं। तथापि भिन्ना स्वरूप युक्तिके लिए इसे मान भी लिया जाय तो उक्त मायासे क्रिया कैसे सम्भव है? किसकी इच्छासे माया क्रियावती होती है? यदि ब्रह्मकी इच्छासे ही माया क्रियावती होती है, तो फिर ब्रह्म निर्विकार रहा कहाँ? यदि ब्रह्मको निर्विकार मानकर मायाकी इच्छाको स्वीकार किया जाता है, तो निष्क्रिय ब्रह्मका प्रतिद्वन्द्वी एक दूसरा तत्त्व उठ खड़ा होता है और यह दूसरा तत्त्व इच्छाहीन ब्रह्मको परिच्छिन्न और प्रतिबिम्बित कर डालता है जो ब्रह्मके लिये अत्यन्त दुर्भाग्यकी बात होगी। यदि ब्रह्म ईश्वर होकर सृष्टि करते हैं—ऐसा कल्पित मत माना जाय तो भी ब्रह्ममें स्वतंत्र-इच्छा के अभावके कारण ब्रह्म शक्तिके वशीभूत होनेवाले तत्त्व ठहरते हैं—यह भी उनके लिये दुर्भाग्यकी ही बात है। अतएव मायावाद असत् शास्त्र तथा सर्ववेद विरुद्ध है। इस मतमें प्राकृत युक्तियों द्वारा वेद के अप्राकृत अर्थोंकी केवल विडम्बनामात्र लक्षित होती है।

भगवानकी अचिन्त्य शक्ति माननेसे ज्ञान सुनिर्मल हो जाता है। ब्रह्ममें अद्वैत, निष्कल और निर्विकार—ये धर्मसमूह जिस प्रकार स्वीकृत हैं, उसी प्रकार उनमें अचिन्त्य शक्ति स्वीकृत होने पर उसके द्वारा निर्विकारिता और इच्छामयता—ये दोनों ही युगपत् ब्रह्ममें सुन्दर रूपसे वर्तमान रहकर अविरोध रूपमें कार्य करते हैं। "स ऐक्षत्"—इस वेद मंत्र से ऐसा स्पष्ट है कि परमेश्वरकी इच्छासे ही अचिन्त्य शक्ति जड़-जगत, जीव जगत् और चित् जगत्—ये तीन प्रकारकी सृष्टि करती है। नाहं मन्ये'—श्रुति मंत्रमें भगवानमें अचिन्त्यशक्ति स्वीकृत हुई है। "द्वा सुपर्णा" आदि श्रुतिमंत्रोंमें नित्य भेद और "तत्त्वमसि" मंत्रमें नित्य अभेद दिखलाया गया है। सर्वज्ञ-वेद वाक्योंमें कहीं भी विरोध नहीं है।

अतएव वेदका सर्वाङ्गीण मत यह है कि युगपत् अचिन्त्य-भेदाभेद-स्वरूप-तत्त्व ही सत्य है, नित्य है तथा सार्थक है। वेदका एकदेशीय अर्थ ग्रहण कर मतवाद प्रकाश करनेके लिए अन्य श्रुतिमंत्रोंका खींच-खाँच कर अपने मतके अनुकूल अर्थ करना श्रुतिमंत्रोंका कदर्थ करना है। कर्म-मीमांसकोंकी श्रुतियोंके प्रति अश्रद्धा उनकी मूढ़ता है। उसे पण्डितजन स्वीकार नहीं करते। अतएव वेद-सिद्धान्त यह है कि ईश्वर-कोटिसे पृथग्भूत विभिन्नांश तत्त्वरूप जीव कृष्णकी तटस्थ शक्ति है। जीव शुद्ध पदार्थ है तथा स्वभावतः कृष्णके प्रति आनुगत्यधर्मयुक्त होता है। यही जीवका स्वरूप तत्त्व ज्ञान है इस स्वरूप ज्ञान को भूलनेसे ही जीव माया-कारागारमें पड़ा हुआ है।

परमाराध्यतम ॐविष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य १०८
श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज–श्रीश्री
गुरुदेव की शुभाविर्भाव-तिथि-पूजाके अवसर पर
श्रीश्रीव्यासपूजाके उपलक्ष्यमें

दीन-हीनकी क्षुद्र पुष्पांजलि

चरण-कमल तव मन मधुकर मम,
रहहि सदा नित घेरे।
नयन युगलवर वदन माधुरी,
पियत रहे नित मेरे॥
रसना रटत रहे निशि वासर,
गुणगण विमल घनेरे।
बसति तुम्हार परोरहुँ गुरुवर,
तव वैष्णवजन मेरे॥
दीन हीन अभिमान रहित ह्वै,
भक्त चरण रज मेरे।
विचरहु इत-उत वर प्रसाद हित,
भक्त जननके डेरे॥
कबहुँ भावना यह पुरहुगे,
जीवन साँझ सकारे।
तबहि सफल भाग एहि जनके,
करुणा कर रखवारे॥

आपका ही अधम दास
ओंउम प्रकाश ब्रह्मचारी
"साहित्य रत्न"

श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमा, श्रीमन्महाप्रभुका जन्मोत्सव और नवनिर्मित विशाल मंदिरमें श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी समितिके प्रतिष्ठाता एवं नियामक परिव्राजकाचार्यवर्य १०८ श्री-श्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी नियामकतामें श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें २० फाल्गुन, ५ मार्च, मंगलवारसे २६ फाल्गुन, ११ मार्च, सोमवार तक—सप्ताह कालव्यापी श्रीधाम-परिक्रमा एवं श्रीमन्महाप्रभुका जन्मोत्सव विराट धूम-धामके साथ सुसम्पन्न हुआ है। विशेषतः परिक्रमाके बीच तीसरे दिन २२ फाल्गुनको नौ-चूड़ाविशिष्ट विशाल श्रीमंन्दिर-प्रतिष्ठा और श्रीविग्रहोंके प्राकट्यसे सारे नवद्वीप और आस-पासके स्थानोंमें एक अपूर्व हलचल सी मच गयी। श्रीविग्रह-प्रतिष्ठाके समय त्रिदण्डि संन्यासियों द्वारा उच्चरित चारों वेद, उपनिषद्, वेदान्तदर्शन (गोविन्द भाष्य), अमल पुराण—श्रीमद्भागवत, श्रीमहाभारत (गीता और विष्णुसहस्रनाम), श्रीचैतन्य चरितामृत और श्रीचैतन्यभागवत आदि धर्मशास्त्र-पाठकी मंगल ध्वनि, होम-यज्ञसे उत्थित यज्ञीय-धूमका पवित्र सौरभ तथा उच्च-संकीर्तनकी जगत-पवित्रकारी स्वर-लहरी—इन सबने प्रतिष्ठा-अनुष्ठानको परम पवित्रतामण्डित किया। भिन्न-भिन्न दिनोंकी धर्मसभामें देश-विदेशसे समागत मठाधीशों, त्रिदण्डिचरणों तथा अन्यान्य प्रसिद्ध-प्रसिद्ध वक्ताओंके संस्कृत, हिन्दी और बंगला आदि भाषाओंमें विद्वतापूर्ण तथा अनुभवयुक्त भाषणों, प्रवचनों तथा कीर्तनोंसे अनुष्ठान सचमुच ही सजीव हो उठा था। निमंत्रित या अनिमंत्रित समस्त लोगोंको मुक्तहस्तसे अबाधगतिसे विविध प्रकारका सुस्वादु महाप्रसाद वितरण किया गया। इस वर्ष श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा अनुष्ठानके कारण यात्रियोंकी संख्या पूर्व-पूर्व वर्षोंकी अपेक्षा आशातीत अधिक थी। लगभग दस हजार व्यक्तियोंका दैनिक भण्डारा होता था।

इस महदनुष्ठानमें योगदान करनेवाले या पधारनेवाले प्रमुख मठाचार्यों एवं त्रिदण्डि-चरणोंके नाम निम्नलिखित हैं—

(१) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति रक्षक श्रीधर महाराज
(२) " " " सारंग गोस्वामी "
(३) " " " सर्वस्व गिरि "
(४) " " " भूदेव श्रौती "
(५) " " " प्रकाश अरण्य "
(६) " " " विचार यायावर "
(७) " " " दयित माधव "
(८) " " " प्रमोद पुरी "
(९) " " " देशिक आचार्य "

(१०) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति सौध आश्रम महाराज
(११) " " " वारिधि पुरी "
(१२) " " " जीवन जनार्दन "
(१३) " " " सौरभ भक्तिसार "
(१४) " " " विकाश हृषिकेष "
(१५) " " " सागर महाराज
(१६) " " " प्रापन दामोदर "
(१७) " " " सुहृद् अकिंचन "
(१८) " " " वल्लभ तीर्थ "
(१९) " " " शरण साधु "

श्रील आचार्यदेवके अनुकम्पित त्रिदण्डिपादगण—

(२०) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज
(२१) " " " त्रिविक्रम "
(२२) " " " नारायण "
(२३) " " " परिव्राजक "
(२४) " " " शुद्धाद्वैती "
(२५) " " " शान्त "
(२६) " " " मुनि "
(२७) " " " हरिजन "
(२८) " " " विष्णुदैवत "
(२९) " " " राध्यान्ती "
(३०) " " " उर्द्धमन्थी "

१९ फाल्गुन सोमवार श्रीधाम-परिक्रमाकी अधिवास-तिथिको श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विकाकी सन्ध्यारति एवं श्रीतुलसीपरिक्रमा-कीर्तनके पश्चात् रातके ७-३० बजे श्रीमठके नव-निर्मित विशाल नाट्य-मन्दिरमें धर्मसभाका अधिवेशन हुआ। श्रीश्रीआचार्यदेवने अपने संक्षिप्त परन्तु सारगर्भित अभिभाषणमें श्रीनवद्वीपधाम-तत्त्व और माहात्म्यका वर्णन कर परिक्रमाकी विधि तथा अगले दिनके कार्यक्रम पर प्रकाश डाला। तत्पश्चात् त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति जीवन जनार्दन महाराजने श्रीमद्भागवतका बड़े ही आकर्षक ढङ्गसे प्रवचन कर श्रोतृमण्डिलीका आनन्दवर्द्धन किया।

पहले दिन २० फाल्गुन, मंगलवारको प्रातःकाल श्रीश्रीआचार्यदेवके निर्देशानुसार त्रिदण्डि संन्यासियोंकी संचालकतामें एक अभूतपूर्व विराट जुलूसके रूपमें परिक्रमा पार्टी श्रीकोल द्वीपसे श्रीगोद्रुम द्वीप एवं मध्यद्वीपके लिए निकली। सबसे आगे श्रीगौड़ीय-वेदान्त समिति एवं श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके पताके लहराते हुए चल रहे थे। उसके पीछे संन्यासी-ब्रह्मचारियों द्वारा परिसेवित तथा उनके कन्धों पर वहनकी जाती हुई सुसज्जित पालकी पर विराजमान श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गजी आनन्दसे पधार रहे थे। तत्पश्चात हाथों में त्रिदण्ड धारण किये हुए पंक्तिबद्ध संन्यासीगण और उनके पीछे अपनी कीर्तन ध्वनिसे दिग्-दिगन्तको परिव्याप्त करती हुई भावोन्मत कीर्तन-मण्डली झूमती हुई बढ़ रही थी। फिर उसके पीछे लहराता हुआ अपार यात्री समूह कीर्तन करता हुआ अग्रसर हो रहा था। अपूर्व मुग्धकारी दृश्य था। जिधर से परिक्रमा पार्टी निकलती थी, उधर ही उथल-पुथल मच जाती। लोग अपना काम-धंधा तो क्या शरीर की सुध-बुध खोकर स्वयं संकीर्तनके तालके साथ नृत्य करने लगते थे।

इस प्रकार परिक्रमा पार्टी पुण्यतोया भगवती भागीरथी को पार कर श्रीमायापुरके उद्देश्यसे दण्डवत-प्रणाम कर स्वरूपगंज गादिगाछा, सुरभिकुञ्ज, स्वानन्द-सुखदकुञ्ज, सुवर्णविहारकी परिक्रमा कर श्रीनृसिंहपल्ली उपस्थित हुई। वहाँ दोपहरमें श्रीगौरसुन्दर और श्रीनृसिंहदेवका महाप्रसाद सेवन कर लौटते समय श्रीहरिहरि क्षेत्र (महावाराणसी) का दर्शन कर मध्यद्वीपस्थ हंसवाहन आदिका माहात्म्य श्रवण करती हुई रातके ७ बजे श्रीमठको लौटी। स्वानन्द-सुखद-कुञ्जमें श्रील आचार्यदेवने समिति द्वारा परिचालित परिक्रमा-विधिकी विशेषता एवं उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए एक सारगर्भित भाषण दिया। तत्पश्चात् श्रीपाद जनार्दन महाराजने भी श्रीभक्ति-विनोद तत्त्व और उनके उपदेशके सम्बन्धमें भावपूर्ण भाषण दिया। रातमें श्रीपाद शान्त महाराजने श्रीमद्भागवतका पाठ किया।

दूसरे दिन उसी प्रकार बड़े उल्लाससे यात्रीगण श्रीकोलद्वीपकी परिक्रमा करते हुए समुद्रगढ़ पहुँचे। वहाँ श्रीपाद जनार्दन महाराज एवं श्रीपाद त्रिविक्रम महाराजके भाषणोंके पश्चात् श्रीपाद नारायण महाराजने श्रीधाम-माहात्म्य-ग्रन्थसे वहाँ का प्रसंग एवं माहात्म्यका पाठ किया। फिर वहाँसे चम्पकहट्टमें द्विजवानीनाथ द्वारा सेवित श्रीगौरगदाधरजीका दर्शन कर कुछ अग्रसर होकर ऋतुद्वीप (राधाकुंड-श्याम कुंड) का प्रसंग और माहात्म्य श्रवण कर रास्तेमें श्रीजह्नुद्वीपमें जह्नुमुनिकी तपस्या स्थलीका दर्शन करती हुई परिक्रमा-पार्टी विद्यानगरमें श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके पाटमें (स्थानमें) उपस्थित हुई। वहाँके दर्शनीय स्थानोंका दर्शन एवं परिक्रमा कर पार्टी मोदद्रुम द्वीपमें श्रीवृन्दावनदास ठाकुरके पाटकी परिक्रमा तथा धाम-माहात्म्य श्रवण कर ब्रह्मणीतलामें एकादशीका अनुकल्प ग्रहण करके संन्ध्याके समय श्रीमठको लौटी।

तीसरे दिन श्रीमंदिर और श्रीविग्रह-प्रतिष्ठाके कारण परिक्रमा बन्द रही। उक्त दिवस ब्राह्ममुहूर्त में मंगलारति कीर्तनके साथ-साथ बैण्ड पार्टी एवं सहनाई की सुरीली तान अनुष्ठानकी मांगलिकताकी सूचना

दे रही थी। संन्यासी-ब्रह्मचारी तथा अन्यान्य मठवासीजन अनुष्ठानके आयोजनमें बड़े ही व्यस्त थे। अरुणोदयके साथ ही श्रील आचार्यदेव हाथोंमें कुंभ (घड़ा) लेकर अभिषेकके लिए पुनीत गंगाजल भरनेके लिए बैण्ड पार्टीके साथ पधारे। सन्यासियों, ब्रह्मचारियों तथा हजारों यात्रियोंका समूह हाथोंमें घड़ा लेकर संकीर्तन करते-करते भागीरथीके तट पर पहुँचे तथा वहाँसे जल भर कर श्रीमठको लौट आये।

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराजके पौरोहित्यमें श्रीआचार्यदेवने श्रीमंदिर-प्रतिष्ठाका कार्य सम्पन्न किया। तत्पश्चात् श्रीविग्रहोंके अभिषेकके लिए प्रतिनिधि-विग्रहोंको मंदिरके बरामदे में पधरा कर १०८ घड़े पंचामृत-मिश्रित गंगाजल द्वारा विधिपूर्वक अभिषेकका कार्य प्रारम्भ हुआ। बीच-बीचमें श्रीश्रीविग्रहोंकी जयघोषसे दिशाएँ गूँजने लगीं। इधर संकीर्तनका गगनभेदी स्वर, बैंड पार्टीका मुग्धकारी तराना तथा स्त्रियोंकी हूलू ध्वनिसे वातावरण मुखरित हो उठा। दूसरी तरफ श्रीपाद जनार्दन महाराज प्रमुख त्रिदण्डि पादगण श्रेणी बद्ध होकर सुललित स्वरसे वेद, उपनिषद्, श्रीमद्भागवत, गीता, विष्णुसहस्रनाम, श्रीचैतन्यचरितामृत और श्रीचैतन्यभागवत आदि शास्त्रोंका पाठ कर रहे थे। पास ही परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति प्रमोद पुरी महाराज और श्रीराघव चैतन्य ब्रह्मचारीजी ऊँकार-समन्वित मंत्रोच्चारपूर्वक यज्ञाग्निमें आहुति प्रदान कर रहे थे। उस समयका दृश्य देखकर ऐसा लगता था, मानो त्रेता या द्वापर युगके कोई राजर्षि राजसूय यज्ञका विराट अनुष्ठान कर रहे हों।

उस समय नाट्यमंदिर और श्रीमंदिरके चारों ओर अगणित दर्शक अनिमेष दृष्टिसे अभिषेकका दर्शन कर रहे थे। श्रीश्रीआचार्यदेवने सर्वप्रथम श्रीविग्रहोंका अभिषेक किया। तदनन्तर दूसरे सभी संन्यासियों, ब्रह्मचारियों तथा मठके दीक्षित स्त्री-पुरुषोंको भी अभिषेक करनेका सुयोग दिया। इस प्रकार परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति भूदेव श्रौती महाराजके पौरोहित्यमें श्रील आचार्य देवने प्रतिष्ठाका कार्य सुसम्पन्न किया।

इसी बीच यतिप्रवर श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर महाराज त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति विचार यायावर महाराजके साथ सभामंडपमें पधारे। उन्हें आदर पूर्वक भाषण मंच पर आसन और माल्य-चंदन द्वारा भूषित किया गया। तत्पश्चात् श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर महाराजने ध्वनि-प्रसारण यंत्रसे श्रीगौड़ीय मठका दान तथा उसके दार्शनिक विचारोंके श्रेष्ठत्वके सम्बन्धमें एक सारगर्भ दीर्घ अभिभाषण प्रदान किया। भाषणके समय चूचूड़ा कोर्टके अग्रणी आईनजीवी श्रीयुत चन्द्रनाथ मुखर्जी ऐडवोकेट आदि भी उपस्थित हुए। भाषणके पश्चात् श्रील आचार्यदेवने श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर महाराजको सम्बर्धना पूर्वक श्रीमंदिरके द्वारके पास ले जाकर उनसे श्रीमंदिरका द्वार उद्घाटन करनेके लिए अनुरोध किया, श्रील महाराजने असंख्य

दर्शन-लोलुप व्यक्तियोंके सामने मंदिरके तीनों द्वारोंका उद्घाटन किया । चारों ओर से जय-जयकी ध्वनि, हरिध्वनि, स्त्रियोंकी हूलूध्वनि, संकीर्तन, मृदङ्ग और नानाप्रकारके वाद्यों (बैंड पार्टी) के तुमुल शब्दसे दिशाएँ प्रकम्पित हो उठीं। इस प्रकार श्रीमंदिरके मध्य प्रकोष्ठमें श्रीमन्महाप्रभुजी और श्रीश्रीराधा-विनोद बिहारीजी, दक्षिण प्रकोष्ठमें धामेश्वर श्रीश्रीकोलदेव (वराहदेव) और श्रीलक्ष्मीदेवी तथा वाम प्रकोष्ठमें जगद्गुरु श्रील भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती ठाकुरके अर्च्चा-विग्रहोंने श्रीश्रीआचार्य देवके माध्यमसे जगतको दर्शन प्रदान किया। (इसमें वैशिष्ट्य यह है कि श्रीकृष्ण-विग्रह और श्रीमन्महाप्रभु-विग्रह—दोनोंने ही "रसराज महाभाव—दोनों एक रूप" इस वाणीकी सार्थकता कर 'राधा-विनोद-बिहारी तत्त्वाष्टकम्' धृत-"राधाचिन्ता-निवेशेन यस्य कान्तिर्विलोपिता। तेषां वै चरणं वंदे राधालिङ्गित-विग्रहम् ॥" वाक्यके भजन चातुर्य विशिष्ट श्रीराधारानीके वर्ण (अङ्गकान्ति) को अङ्गीकार कर कृष्ण वर्णको ढक रखा है।) तदनन्तर त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति देशिक आचार्य महाराजने श्रीविग्रहोंका अर्चन और भोगराग सम्पन्न किया। भोगारतिके पश्चात दिनभर सभी आने वाले लोगोंको महाप्रसाद वितरण किया गया। दो पहर में द्वार-उद्घाटनके समय त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति सौध आश्रम महाराज, श्रीमद्भक्ति विकास हृषिकेश महाराज और तीसरे पहर त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति सारङ्ग गोस्वामी महाराज तथा त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति दयित माधव महाराज परिक्रमा-पार्टीके साथ पधारे थे। श्रील गोस्वामी महाराजकी इच्छानुसार श्रीमंदिरके जगमोहनमें महाजनोंकी पदावलियोंका कीर्तन हुआ।

आज शामको श्रीहरिकीर्तन नाट्य मंदिरमें आयोजित धर्मसभामें श्रीआचार्यदेवकी इच्छानुसार त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति सर्वस्व गिरि महाराजने सभापतिका आसन ग्रहण किया। त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति भूदेव श्रौती महाराज, त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति सौरभ भक्ति सार महाराजके भाषणोंके पश्चात् श्रील आचार्य देवने "श्रीविग्रह तत्त्वके सम्बन्धमें वैष्णवों एवं मायावादी सम्प्रदायके दार्शनिक विचारोंका पार्थक्य एवं उनके द्वारा प्रकाशित श्रीविनोदबिहारी-मूर्त्तिका वर्ण कृष्ण-वर्ण न होनेके कारणके ऊपर बड़ा ही मार्मिक भाषण दिया। उन्होंने अपने भाषणके अन्तमें श्रीमंदिर-निर्माण-सेवाके अग्रणी परलोकगत श्रीयुत गिरिधारी दासाधिकारी और नाट्य मंदिर निर्माणका सम्पूर्ण रूपसे अर्थानुकूल्यकारी श्रीयुत हरिपद दासाधिकारी इन दोनों महोदयोंके सेवा-सौन्दर्यका वर्णन किया। अंतमें सभापति महोदयने एक मनोज्ञ भाषण प्रदान किया।

श्रीश्रीमीराकृष्ण-बालविग्रह विनोदविहारीजी

शिवदीप धामेश्वर श्रीकोलदेव (वराहदेव)
और बालश्रीजी

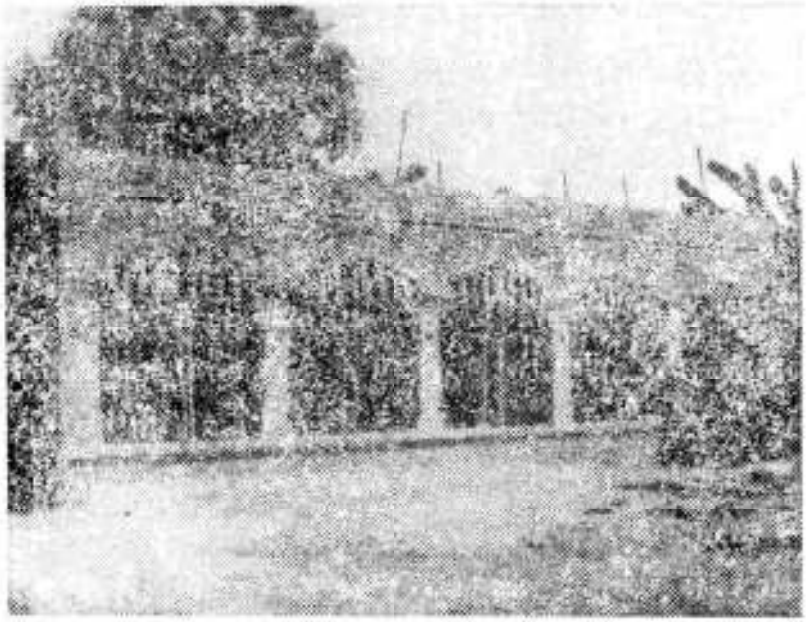

निर्माण हो रहे श्रीहरिकीर्तन नाट्य मन्दिरका दृश्य

हम अत्यन्त आनन्दके साथ बतला रहे हैं कि श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ के श्रीश्रीविग्रहोंकी मनोहर रूप-छटाके प्रति मुग्ध होकर दर्शनकारी भक्तमण्डली एक स्वरसे इनकी सर्वश्रेष्ठताकी घोषणा कर रही है।

चौथे दिन, परिक्रमा पार्टीने प्रौढ़ामाया, श्रीजगन्नाथदास बाबाजी महाराजकी समाधि और श्रीरुद्र-द्वीपकी परिक्रमा की। रातके ७ बजे धर्मसभाका विशेष अधिवेशन हुआ। आज श्रील आचार्यदेवने सबके विशेष अनुरोध करने पर सभापतिका आसन ग्रहण किया। प्रधान अतिथि थे—पण्डित प्रवर श्रीयुत गोविन्द भूषण सांख्यतीर्थ महोदय। त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति देशिक आचार्य महाराजने सबसे पहले संस्कृतमें भाषण दिया। तदनन्तर पण्डित श्रीयुत नित्यानन्द पंचतीर्थ महोदयने भी संस्कृत भाषामें साधुसङ्ग के महत्व पर सुन्दर रूपसे प्रकाश डाला। तत्पश्चात प्रधान अतिथि महोदयने समितिके प्रयासों एवं प्रचारकी प्रशंसा करते हुए सुन्दर एवं सरस भाषण दिया। अन्तमें श्रील आचार्य देवने सभापतिके आसनसे एक हृदय-स्पर्शी भाषण प्रदान किया।

पाँचवें दिन, परिक्रमा पार्टीने श्रीअन्तर्द्वीपमें श्रीमन्महाप्रभुका आविर्भाव स्थल—श्रीयोगपीठ, श्रीवास अंगन, श्रील प्रभुपादकी समाधि और श्रीचैतन्य-मठ, श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजकी समाधि और श्रीचाँदकाजीकी समाधिका दर्शन और परिक्रमा कर दोपहरमें श्रीजयदेवगोस्वामीके (पाट) में प्रसाद सेवन किया। सन्ध्याके समय लौटते समय रास्तेमें श्रीनन्दन आचार्यके भवनमें प्रतिष्ठित श्रीगौर-निताइ श्रीविग्रहोंका दर्शन कर तथा वहाँकी सुन्दर शिक्षापूर्ण प्रदर्शनीको देखकर पार्टी श्रीईशोद्यानके

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठमें श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-राधा-मदनमोहनजीका दर्शन एवं परिक्रमा करती हुई श्रीमठमें लौट आयी । आज रातकी धर्मसभामें त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति सर्वस्व गिरि महाराजने सभापतिका आसन ग्रहण किया । त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति विचार यायावर महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति जीवन जनार्दन महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवारिधि पुरी महाराज एवं अन्तमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति-वेदान्त नारायण महाराजने (हिन्दीमें) भाषण दिया ।

छठे दिन श्रीश्रीगौराविर्भावके उपलक्ष्यसे सबने उपवास किया । सवेरेसे शामतक श्रीचैतन्य-भागवतका पारायण हुआ । बीच-बीचमें कीर्तन भी हुआ । सन्ध्याके समय श्रीगौराविर्भावके पश्चात त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्दन महाराजके सभापतित्वमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त वामन महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त शुद्धाद्वैती महाराज आदिने भाषण किया ।

सातवें दिन १० बजे दिनसे कलके दीक्षा-मन्त्र पाये हुए भक्तोंका उपनयन संस्कार एवं होम-यज्ञ सम्पन्न हुआ । साथ-ही श्रील आचार्यदेवने अनुग्रहपूर्वक श्रीपाद भागवत दासाधिकारी एवं श्रीपाद ब्रजानन्ददास ब्रजवासी महोदयोंको त्रिदण्ड संन्यास तथा श्रील प्रभुपादके द्वारा श्रीहरिनाम एवं दीक्षा प्राप्त अति प्राचीन वैष्णव श्रीयुत रघुनाथ दासाधिकारीको बाबाजी-वेश प्रदान किया । इनके संन्यास और वेशका नाम क्रमशः त्रिदंडिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त राध्यान्ती महाराज तथा त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त उर्द्धमंथी महाराज और श्रीमद् रघुनाथदास बाबाजी महाराज हुए हैं । संध्याके समय श्रील आचार्यदेवके सभापतित्वमें धर्म-सभाका अधिवेशन हुआ, जिसमें उपरोक्त तीनोंके अतिरिक्त श्रीरसिकमोहन ब्रजवासी, पण्डित श्रीनिमाई चरण व्याकरण तीर्थ एवं हिन्दी भाषामें श्रीहरिदास ब्रजवासी महोदयका भाषण हुआ । आजकी सभामें श्रील प्रभुपादके प्रवीण संन्यासी त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति प्रकाश अरण्य महाराज प्रधान अतिथिके रूपमें उपस्थित थे ।। उन्होंने अंतमें एक सुन्दर एवं विस्तृत भाषण किया । आजके दिन साधारण महोत्सव हुआ, जिसमें दिनके ६ बजेसे रातके ११ बजे तक सर्व साधारणको मुक्त हस्तसे महाप्रसाद वितरण किया गया । आशातीत यात्री संख्या होने पर पर भी समितिकी अपनी कई अट्टालिकाएँ और सुवृहत नाट्य मंदिर बन जानेके कारण उन्हें कोई असुविधा नहीं हुई । दूसरी ओर श्रीयुत कृष्णप्रसाद दासाधिकारी महोदयकी आर्थिक सेवासे एक बड़ा पक्का इन्दारा बन जानेसे जलका अभाव भी सम्पूर्ण रूपसे दूर हो गया है ।

—प्रचार सम्पादक

———

इन्द्रप्रस्थ गौड़ीय मठमें श्रीविग्रहोंका प्राकट्य

श्रीगौड़ीय संघके अन्तर्गत 'इन्द्रप्रस्थ गौड़ीय मठ', सब्जी मण्डी, दिल्ली, में श्रीगौड़ीय संघके संघपति एवं प्रतिष्ठाता परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति सारंग गोस्वामी महाराजकी अध्यक्षतामें वहाँके नव-निर्मित मंदिरमें श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-राधा-वृन्दावनचन्द्रके श्रीविग्रहोंकी प्रतिष्ठाका २६ जनवरीसे २ फरवरी तक पञ्च-दिवसीय अनुष्ठान खूब समारोह-के साथ सुसम्पन्न हुआ है।

इसके उपलक्ष्यमें २६ जनवरी की रात्रि ७ बजेसे ६ बजे तक शुभाधिवास कीर्तन एवं पाठ हुआ। दूसरे दिन ३० जनवरीको उषा-कीर्तनके पश्चात् संकीर्तन, हवन तथा उपनिषद्, भागवत, गीता और श्रीचैतन्यचरितामृत—इन चार भक्ति-ग्रन्थोंकी पाठ-ध्वनि, वैदिक एवं पांचरात्रिक विधि-विधानों एवं मन्त्रोच्चारके बीच संघके नव-निर्मित मन्दिरमें श्री-श्रीविग्रहोंका अभिषेक और प्रतिष्ठा सुसम्पन्न हुई। शामको ४ से ६ बजे तक सुसज्जित रथ पर नव-प्रकटित श्रीविग्रहोंको पधरा कर विराट और अपूर्व नगर-संकीर्तन हुआ। नगर-संकीर्तनमें दिल्ली नगरकी अनेक संकीर्तन मण्डलियों और वहाँकी विशेष एवं साधारण सभी श्रेणीके नागरिकोंने बड़ी संख्यामें योगदान किया।

इस अनुष्ठानकी चार दिनोंकी चार धर्म सभाएँ विशेष महत्वपूर्ण और प्रधान आकर्षण-केन्द्र रहीं, जिनमें 'विश्वमें धर्मकी आवश्यकता' श्रीभागवत धर्म पर श्रीशङ्कराचार्य, श्रीरामानुज, श्रीमध्व, श्री-वल्लभ एवं 'श्रीमन्महाप्रभुजीका सिद्धान्त' आदि विषयों पर तत्तत् साम्प्रदायिक अनुभवी संतों एवं अधिकारी विद्वानोंके पाण्डित्यपूर्ण भाषण हुए हैं। इनमेंसे गौड़ीय संघपति परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिसारंग गोस्वामी महाराज, श्रीधाम वृन्दावनके 'इन्स्टीट्यूट' ऑफ ओरियन्टल फिलासफीके अध्यक्ष—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति हृदय वन महाराज, बैक-टू-गौड हेड पत्रिकाके सम्पादक—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त स्वामी महाराज, 'सारस्वत गौड़ीय'के सम्पादक त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिसौरभ भक्तिसार महाराज, "श्रीभागवत-पत्रिका"के सम्पादक त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराज, 'श्रीसज्जन-तोषिणी' पत्रिकाके सम्पादक त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति कमल पर्वत महाराज, श्रीगोवर्द्धनदास ब्रह्मचारी, श्रीव्रजवल्लभ शरण महाराज वेदान्ताचार्य (निम्बार्क सम्प्रदाय) श्री के. डी. भारद्वाज, एम. ए. पी. एच. डी., शास्त्री पुराणाचार्य, श्रीस्वाहानन्दजी, डा० आर. के. दास गुप्त एम. ए. D. Phil (कलकत्ता) D. Phil (oxon), डा० आर. भी. घोष एम. ए. पी. एच. डी. Litl. (Paris), श्रीश्यामनाथजी (केन्द्रिय उपमन्त्री) प्रमुख वक्ताओंके नाम विशेष उल्लेख-योग्य हैं।

यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि गौड़ीय संघने भगवद्भक्त पाण्डवोंकी प्राचीन नगरी इन्द्रप्रस्थ

(दिल्लीमें) श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-राधावृन्दावन बिहारी जीकी श्रीविग्रहोंकी प्रतिष्ठा एवं विभिन्न धर्म-सभाओं-में "धर्मकी आवश्यकता तथा भागवतधर्म पर विभिन्न वैष्णव दार्शनिक सम्प्रदायोंका सिद्धान्त" जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर तत्तत् अधिकारी और अनुभवी संतों तथा विद्वानोंके विद्वतापूर्ण भाषण और उपदेशोंकी व्यवस्था द्वारा वहाँके आधुनिक धर्म-निरपेक्ष राजनैतिक वातावरणमें धार्मिक मोड़ देनेके प्रयासमें एक श्लाघनीय प्रयत्न किया है। हम आशा करते हैं कि भारतकी वर्तमान दयनीय परि-स्थितिको देखते हुए यहाँके आधुनिक कर्णधार एवं राजनीतिज्ञ शीघ्र ही धर्म-निरपेक्ष नीतिकी भ्रान्तिका अनुभव कर धार्मिक-नीति अपनानेकी उपयोगिताकी उपलब्धि करेंगे। इसके लिए गौड़ीय संघपतिके अनुगत इन्द्रप्रस्थ गौड़ीय मठके सदस्यों, विशेषकर त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिकमल पर्वत महाराजकी सेवा-प्रचेष्टा सराहनीय रही है।

[निजस्व संवाददाता]

श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्बन्धमें विवरण

१—प्रकाशनका स्थान—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा।

२—प्रकाशन की अवधि—मासिक।

३—मुद्रकका नाम—श्रीहेमेन्द्र कुमार।

राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू (भारतीय)।

पता—साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा।

४—प्रकाशकका नाम—श्रीकुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी।

राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू (सारस्वत गौड़ीय ब्राह्मण)।

पता—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा।

५—सम्पादकका नाम—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराज।

राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू (सारस्वत गौड़ीय ब्राह्मण)।

पता—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा।

६—पत्रिकाका स्वत्वाधिकारी—श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके तरफ से उसके प्रतिष्ठाता और नियामक परमहंस स्वामी श्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव महाराज। समिति अनरेजिस्टर्ड।

मैं कुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी, इसके द्वारा घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारीमें और विश्वास के अनुसार सत्य हैं।

१५ अप्रैल, १९६३ —कुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी